# पथचारी

[ सामयिक सामाजिक उपन्यास ]

लेखिका

उषादेवी मित्रा

प्रकाशक

मानस मंदिर

जबलपुर

प्रकाशक—

मानस मंदिर

साठिया कुआ,

जबलपुर।

द्वितीयवार

सन् १९४९

मूल्य २॥)

मुद्रक—

ठा० दलवीरसिंह

साहित्य प्रेस,

जबलपुर।

# प्रकाशक की ओर से

श्रीमती उषादेवी हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यास लेखिका हैं। उनके उपन्यास तथा कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

उपन्यास

वचन का मोल, पिया, जीवन की मुस्कान, आवाज,

कहानी संग्रह

आँधी के छन्द, महावर, नीम चमेली,

रागिनी

सान्ध्यपूरवी, मेघमलार, रामधनुष, रक्त जासौन } यन्त्रस्थ

वर्त्तमान उपन्यास का प्रथम संस्करण—कलकत्ते से निकल चुका है। तब से उसकी बराबर मांग आरही है किन्तु प्रकाशन की असुविधाओं के कारण उसका दूसरा संस्करण अब तक न हो सका। उसे लेकर हम अब पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं।

श्रीमती उषा देवी की कल्पना, वर्णनाशक्ति, रोचक घटनावली तथा मँजी हुई भाषा ने हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान बना लिया है।

यदि पाठकों ने सहयोग दिया तो हम उनकी अन्य रचनाएँ भी प्रकाशित करने का उद्योग करेंगे।

—प्रकाशक

## [ १ ]

शस्य-श्यमला भारत वर्ष के स्तन से अमृत-धारा बहा करती, जीव-जन्तु उस धारा से तृप्त होते। कोई उसे स्नेह से निहारता, कोई माता जैसे सम्मान, श्रद्धा, स्नेह, प्रेम, भक्ति से और कोई लोलुपता, लोभ से उस धारा को देखता; परन्तु फिर भी वह माता बनी रहती, जीव मात्रको स्नेह-दृष्टि से निहारती। 'सु' और 'कु' का प्रश्न उस स्नेह शील, उदार मन में कभी स्थान न पाता। देश-देश में अमृत दान किया करती थी।

तो ऐसी एक विश्वकी माता पड़ गयी थी उस दिन संकट में। ग्रीष्म के दाहकारी सूर्य-उत्ताप से स्तन उसके सूखे जा रहे थे, अमृत का पात्र शून्य-प्राय था। उस दिन चातक के कण्ठ में गान नहीं था, था रोदन! वृक्ष की काया में उल्लास नहीं था,

था विलाप ! उस दिन नदी-नालों में निनाद नहीं था, थी स्तब्धता। और उस दिन उस विश्वमाता भारत के विश्व प्रेमी मन में रह-रह कर उठ रही थी तीव्र कामना—वज्राघात की। अपने बन्ध्यत्व को मिटाने के लिये वह अपने हृदयपर वज्राघात को भी सह लेगी—यदि वर्षा अपने अणु में सहस्र वज्राघात को भी सह लेगी—यदि वर्षा अपने अणु में सहस्र वज्राघात ही लिये एकबार उतर आवे—तो उसके लिये—उस वज्राघात में छिन्न-भिन्न होनेके लिये वह प्रस्तुत रहेगी।

उस दिन सूर्य-किरणमें—मानो अग्निकी ज्वालामुखी फट पड़ी थी। दिन दस बजेसे ही लू चलनी आरम्भ हो गयी। और बनारसका वह वृहत् ग्राम-सा हिंदू यूनिवर्सिटी ? उसके प्रशस्त मैदानोंमें तो पवन ने बसेरा ही कर लिया था। प्रासाद तुल्य सुउच्च, सुदृश्य होस्टल, ततोधिक सुन्दर कालेज, कारखानोंको परिष्कार, परिछिन्न दीवालों पर बावला-सा पवन पछाड़ें खाता फिर रहा था। पथ के दोनों ओर के बड़े-बड़े वृक्षों से वह अठखेलियां कर रहा था। उस दिन कपोत के झुण्ड में जीवन की स्फूर्ति नहीं थी, वे सब कालेज-गुम्बजों के जाली झरोखों में दब के बैठे थे।

पिपीलिका श्रेणीवत् छात्री, छात्रगण कालेजों की ओर चले जा रहे थे। कितनी ही गाड़ी, मोटरें चली जा रहीं इञ्जीनियर और ला कालेज के विद्यार्थीगण प्रशस्त वे स्वच्छ जलमें डबे हुए छुट्टी की खुशियां मना रहे थे। उन

नाएं शेष हो चुकी थीं। केवल इवर बी० ए० और एम० ए० के कालेजों के द्वार पर भीड़ लगी थी। कोई प्रोफेसर उपस्थित थे—कोई कार से उतर रहे थे।

पिट-पिट-पिट करती नितीन की कार पहुँच गयी। सूटेड-बूटेड नितीन ने सिगार का अन्तिम धुँआ मुंह से छोड़ा, फिर सिगार को दूर फेंक दिया। निश्चिंत—आराम से तब कहीं वह उतरा। निकट खड़े, खद्दर परिहित वासुदेव ने शंकित नेत्र से उस गिरे हुए सिगार के प्रति एक बार देखा—फिर दूसरी बार देखा, कार से उतरते हुए प्रोफेसर को। उस शंकित दृष्टि को देखकर नितीन जोर से हंसा। प्रोफेसर दे की विरक्त दृष्टि पल भर के लिये नितीन पर उठ गई,दूसरे ही पल द्रुतगति से कालेज के अन्दर चल दिया।

इस विलासी, परन्तु दुस्साहसी, दुर्मुख, अविनयी, धनी युवक से वहां के प्रत्येक छात्र, प्रोफेसर आदि भलीभांति परिचित थे। शायद ही कोई इससे सन्तुष्ट रहा हो। और यदि ऐसा कहा जावे कि उस वृहत् यूनिवर्सिटी में यही रहा एक विरक्ति कर प्राणी—तो शायद अतिशयोक्ति न होगी।

और नितीन? कदाचित् वह इन बातों को जानता—कदाचित् न जानता, या तो इन बातों को तुच्छ समझता, अवहेलना से देखता। बात यह थी कि न वह किसी से डरता, दबता और न किसी काम को सोच-विचार कर करता। कदाचित् जनता ही उससे डरती और स्वतः उसकी नम्रता स्वीकार

करती। सत्-असत् प्रत्येक कार्य में वह अग्रगामी रहा करता। वह मद्यप था, लम्पट था, दुस्साहसी था; किन्तु विस्मय तो यह है—कि इतनी विशेषताएं लिये हुए भी वह यूनिवर्सिटी पर राज्य-सा किया करता—एकछत्र सम्राट् सा। उसे देखकर यही प्रतीत होता कि हुकूमत करने के लिये वह दुनियां में आया है, आज्ञाँवाहन करने के लिये नहीं। लोग उसका सम्मान करते हैं।

"अरे सुनो तो यार!"—वासुदेव के कन्धे पर हाथ रख कर नितीन ने पुकारा।

किस बात को वह कहेगा, सो वासुदेव जैसे समझ गया, शीघ्रता से कहा उसने—"लू लपटों से शरीर भुना जा रहा है, पीछे सुन लूंगा।"

"वाह रे मर्द! मोम के बने हो? इतनी-सी धूप से डर गये?"

"फैन और खस की टट्टी के नीचे रहा करते हो। तुम अमीर क्या समझो हमारी तकलीफों को। मोटर पर बैठकर अभी आये और बस।"

दो-चार छात्र उन्हें घेरकर खड़े हो गये।

"शहर से यहां तक धूप सहते हुए साइकिल पर आना पड़े तो सब बहादुरी निकल जाय।"—एक बोला।

नितीन के उच्च हास्य से पुनः कालेज एकबार गूंज उठा।

"मोटर पर तुम्हें लोभ है ? अच्छा—ले लो । लाओ—साइकिल मुझे दे दो।" वचन समाप्त कर उसने वासुदेव के हाथ से साइकिल ले ली और कालेज की सीढ़ियों पर चढ़ गया ।

भीतर जाती हुई छात्राएं विस्मय से खड़ी हो गयीं और आकुल विस्मय से वासुदेव उसके पीछे-पीछे चल पड़ा ।

"यह कैसा पागलपन हैं नितीन ? लाओ, मेरी साइकिल दे दो, इसे रख दें । क्लास लगने का घण्टा बजता ही होगा ।"

"अभी कारके लिये कह रहे थे और अब लगे साइकिल मांगने ?"

अपने चारों ओर की भीड़ की तरफ वासुदेव ने मुंह उठाया, फिर नितीन की ओर मुंह किए बोला—"मोटर लेकर मैं गरीब क्या करूंगा ? मेरी साइकिल भली हैं ।"

निविड़ विस्मय से प्रश्न होने लगा—"क्या सच ही कार वासुदेव को दे रहे हो नतीन ?"

"नहीं—क्या मजाक कर रहा हूं ?" नितीन झुंझला पड़ा ।

"फिर कभी लौटाकर लोगे तो नहीं ?"—वैसे ही प्रश्न हुआ ।

"नहीं जी, देकर लेनेवाला मैं नहीं हूं ।"

"ले क्यों नही लेते हो वासु ? नितीन तुम्हारा मित्र है, खुशी से दे रहा है, ले लो ।" कोई बोला ।

"बेवकूफ है ।"—भीड़ में से कोई कह उठा । किन्तु दाता के उद्देश्य में या अस्वीकार करनेवाले के उद्देश्य में ये शब्द कहे गये हों, तो समझ सकना जरा कठिन था ।

एक श्रद्धा, एक विस्मय-मिश्रित प्रशंसा से लड़कियों की आंखें उस बलिष्ट, सुरूप युवक नितीन पर गड़-सीं रहीं।

"ले लूं ?"—एक निपीड़ित असमर्थता, व्यथा वासुदेव के दारिद्र-क्लिष्ट मुख पर व्याप-सी गयी। धीरे से कहने लगा वह—"दुनियां हंसेगी।"

"क्यों ?" वैसे ही धीरे से पूछा नितीन ने।

"हंसेगी दुनियां, गरीब वासुदेव को जिस दिन वह कार पर बैठे देख लेगी—उस दिन-हां-उस दिन वह व्यङ्ग से हंसेगी।"—कह चला वासु—बहुत ही धीरे कहने लगा वह—"मानो भाई वह हंसेगीं, हंसेगी।"—शायद वह अपनी बातें दुनिया को सुनाना न चाहता हो। उस मृदु गुञ्जन को सुनने के लिये नितीन प्रायः उससे टिक गया।"

"हंसेगी ? तो हंसने क्यों नहीं देते ? उस हंसी से डरने की जरूरत ही क्या है ?"

"नहीं-नहीं—।" सरसा वासु अधैर्य स्वर से कह उठा—"मुझ से परिहास मत करो।"

"परिहास ! किन्तु यह परिहास नहीं है। गाड़ी मैं तुम्हें दे ही रहा हूं वासु, इसमें सचाई के सिवा और कुछ नहीं है। ले लो गाड़ी।"

धीरे-धीरे वासु सीधा होकर खड़ा हो गया। अपनी जड़-ता को दूर हटाने के लिये कई बार उसने हाथ-पैर झटक के, बोला—

"अच्छा, अब हंसी-मजाक का वक्त नहीं है, पहला घन्टा

बज चुका है। चलो, अपनी-अपनी सीट पर बैठो, एकजामिन के कुल चार-पांच दिन रह गये हैं, कुछ ख्याल भी है!"

"बड़ा आदमी है उसे किस बात की परवाह है? देखते नहीं हो, दो दिनके बाद आया है।" एक विद्यार्थी ने कहा।

दूसरा कह उठा—"तुम तो दो दिन की कहते हो, जरा इनसे पूछो तो कि इस साल के वक्त कालेज आये हैं। और मजा तो यह है, कि आप एम० ए० में बैठ रहे हैं।"

"तो क्या एम०ए० एकजामिन के लिये मैं बंधा-बंधा फिरूं? वह मेरे अधीन है या मैं उसके?" नितीन मुस्करा रहा था।

"तुम भला क्यों किसी के अधीन होने चले; संसार तुम्हारे अधीन रहेगा। नकल कर, चोरी कर पास हो जाते हो; जैसे कोई जानता न हो। आये हैं बातें करने। तुम तो नशे में मस्त घूमते फिरो।"—कोई मनचला परिहास से हंस उठा।

परन्तु, विस्मय इस बात पर है, कि क्रोधी-स्वभाव नितीन इस बात से चिढ़ा तो नहीं हो, वरन् एक प्रकार की विचित्र खुशी से सीटी बजाता हुआ भीड़ की ओर देखने लगा। सहसा उसकी दृष्टि उस पारसी युवती की दृष्टि से विनियम हो गयी—जो कि हिन्दू यूनिवर्सिटी में नव आगन्तुका थी, एम० ए० में बैठ रही थी और जिसकी दृष्टि में इस उच्छृंखल युवक के लिये सम्भ्रम, श्रद्धा थी।

दूसरी घण्टी बज उठी।

व्यस्त छात्रगण अन्दर प्रवेश करने लगे। छात्राएं रास्ते से

जरा हटकर खड़ी हो गयीं, कुछ दो तल्ले की सीढ़ियों पर चढ़ने लगीं।

नितीन पारसी युवती के निकट असंकोच चला गया, पूछा—

"आप नयी आई हैं यहां?"

"जी हां।" —संकुचित हो वह बोली।

उस अभद्र, लोलुप दृष्टि के नीचे शायद वह विरक्त हुई; शायद न हुई।

"कहां से आई हैं? तकलीफ तो नहीं हो रही है?"

"जी नहीं।"—उसने चारों ओर देखा, अपने और नितीन के सिवा तीसरे व्यक्ति को वहां न पाया।

सप्रतिभ हंसी के साथ कहने लगा नितीन—"मुझ जैसे अपरिचित की ऐसी जिज्ञासा से आप शायद विरक्त हो रही हों। लेकिन हम इस हिन्दू यूनिवर्सिटी के छात्र हैं इसे प्राणों-सा चाहते हैं; सम्मान श्रद्धा करते हैं; हमारा धर्म है यहां नये आये हुओं की तकलीफ, अड़चनों से बचाना; विशेष कर आप सी स्त्री को। आपकी खोज-खबर लेना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।"

युवती मोहित हो गयी; कहा—"आपको अनेक धन्यवाद। हां—परदेश में जरा अड़चन तो पड़ने की ही है।"

"लेकिन उतना भी मैं नहीं होने देना चाहता। आप ठहरी कहां है?"

"लंका में, हैजा वहां जोर का हो रहा है।"

"लंका ? तो नजदीक ही है। हैजा तो इस वक्त यूनिवर्सिटी में भी हो गया है।"

"और पहले कभी नहीं हुआ ?"

"शायद नहीं। अजी हिन्दू यूनिवर्सिटी या ठट्ठा ?"

"आपका कहना ठीक है। इस यूनिवर्सिटी की ऐसी धारणा मेरे मन में थी ही नहीं। मानो एक गांव हो।

मालवीयजी ने वास्तविक ही असाध्य-साधन किया है।?

"अभी क्या देखा ? तुम तो दो दिन हुये, यहां आई हो। जरा घूम-फिरकर जब देखोगी—तब समझोगी कि यह क्या है ? अब केनेल बन ही चुका है और विश्वनाथ का मन्दिर भी बनने को है। बस फिर क्या ? दूसरी इन्द्रपुरी बन जायगी। दुनियां का आठवां आश्चर्य भी हम इस यूनिवर्सिटी को कह सकते हैं। | हां-आप अकेली आई हैं या साथी भी कोई ?"

"छोटा भाई साथ है। गरमी यहां बहुत है।"

"गरमी ? अच्छा, आप दोपहर में मेरे घर चली आइये। गाड़ी रोज भिजा दिया करूंगा। नहीं-नहीं, संकोच की बात नहीं, गाड़ी तुम्हारी है, घर-मकान और मैं—"

अन्दर जाते-जाते सुविमल पल भर के लिये रुका, व्यंग उस के कण्ठमें साकार हो उठा—"वाह नितीन, मजेमें हो यार !—" वह भीतर चल दिया।

उस परिहास ने युवती के चित्त पर एक आछन्नता-सी ला दी, उसी प्रकार, वह बोली—"नमस्कार।"

युवती के पीछे-पीछे नितीन भी भीतर चल पड़ा—"मकान का पता तो कह दो।"

"यूनिवर्सिटी गेट के पास, सामने की दुकान के ऊपर का एक कमरा ले लिया है।"

"अच्छा-अच्छा, मैं समझ गया।"

दोनों हाल में पहुँचे। लेक्चर चल रहा था—प्रोफेसर का। उन दोनों को देखकर जाने क्यों कुछ छात्र मुस्करा पड़े।

(२)

प्रखर सूर्य-किरण से धरती जली जा रही थी। अशथ पर बैठी चील चीत्कार कर रही थी, तृष्णा से उसका कण्ठ सूखा जा रहा था। काग जूठे अन्न का लोभ भूलकर पेड़-पत्तियों में दुबके बैठे थे। गौरइयां जल में फुदुक रही थीं। यूनिवर्सिटी का पथ जन-मानव शून्य था।

उस दोपहरी की धूप में कुछ छात्र कालेज से बाहर निकल आये। कोई सिर पर हैट लगाये, कोई रूमाल से सिर ढांके चलने लगे। प्रांगण में क्रीड़ारत उलंग लू उन छात्रों को उड़ाकर न जाने कौन से अनजान देश में ले जाना चाहने लगी। नितीन भी उनका साथी था।

कालेज की अन्तिम सीढ़ी पर एक रोता-हाँफता बालक मिल गया—"भाभी चली गयीं भैया!"—वह सिसक-सिसक कर कहने लगा। "चली गई? कौन? क्या कहते हो प्रकाश?"—

एक अनजान विस्मय, अविश्वास से कह सका प्रताप इतना ही।

"भैया-भैया"—बड़े भाई से लिपटकर प्रकाश रो उठा। उस क्रन्दन शब्द से उन दोनों के चहुं ओर भीड़ सी लग गई।

"धीरज धरो भाई।"—किसी ने प्रताप का सिर सुहराया।

"यह दुनियाँ है।"—कोई सहानुभूति से आर्द्र हुआ।

"धीरज को देखो न, एक वर्ष हुए शादी के और बच्चा पैदा होते वक्त बच्चा भी गया स्त्री भी गई, डाक्टरों से उसने घर भर दिया, लेकिन मौत किसी की सुनती भी कहाँ है ?" भीड़ से रास्ता निकालता हुआ नितीन उसके निकट पहुँचा। फिर धीरे धीरे उसके पीठ पर हाथ फेरकर पुकारा "प्रताप"।

प्रताप के उस शून्य, अर्थहीन दृष्टि को देखकर नितीन का विलासी हृदय सिहर उठा, उस सर्व शान्त दृष्टि के सामने जैसे पल-पल में उसके हृदय का ममत्व जाग उठा, मोह पुकार उठा वह—"प्रताप भाई"।

उस आवाज में ? कदाचित्त वास्तविक सहानुभूति रही हो अथवा हो कोई नूतन सन्देश, कौन जाने, परन्तु उस आवाज ने प्रताप के सूखी सी आखों में आँसू बहा दिया, इतना तो सही ही है।

इस रो सकने से प्रताप का आघात जैसे कुछ सहनीय सा हो गया।

"मेरा कोई नहीं है।"—कह सका वह इतना ही।

"मैं हूं भाई।" नितीन ने अपने को अनजान में शायद कहा।

"क्या बीमारी थी?" एक ने पूछा।

"कुछ भी नहीं। अभी-अभी उनको कै हुई और बस भाभी ने आंखें बन्द कर लीं।"

"कै?"—युवकों में आतंक छा गया।

'अभी आया' कहकर कुछ लड़के तभी चल पड़े, कुछ घर में बीमारी है—कहकर निकल गये। रह गये मात्र चार। "मेरा तो और कोई नहीं है। अब क्या करें भाई? वह तो चली ही गई, किन्तु स्मशान तक उसे कौन ले जायगा? मैं तो अकेला हूं।" सहमकर प्रताप ने कहा।

बसन्त और चन्द्रशेखर कहने लगे—"घबराते क्यों हो? चलो, हम दोनों चलते हैं।"

"तीन हुए हम, और शायद ही कोई जावे। हैजे की बीमारी है न।" प्रताप ने कृतज्ञ नेत्रों से उन दोनों को देखकर कहा। "और मैं भी एक हूं।" नितीन कह उठा।

"तुम!" विस्मय-आकुलता से प्रत्येक की दृष्टि उस पर गड़-सी गयी—इस तरह जैसे कि वह दृष्टि कह रही हो—तुम विलासी युवक, तुम, ऐसी कड़ी धूप में कन्धे पर धरे शव को स्मशान तक ले जाओगे? मोटर के बिना एक पैर भी नहीं चल सकते हो, गरमी के कारण कालेज आना तक छोड़ दिया है दिन-रात वेश्या और शराब में चूर रहने वाले वही तुम, स्मशान तक चलोगे और नंगे पैर?

"चलो यार, देर क्यों कर रहे हो ? हम चार हो गये। हिन्दू यूनिवर्सिटी है—पचासों स्टूडेन्ट बिना बुलाये चले आयेंगे, कन्धा बदलते चलना और न भी आवें तो हानि क्या है, हम चार क्या कम हैं ?" कहता हुआ नितीन आगे बढ़ चला—"किन्तु पहनने के लिये मुझे एक धोती दे देना। और धन्नूसिंह कार लिए तुम यहीं ठहरना, एक बाई अभी निकलेगी, उसे लंका में पहुँचा कर घर लौट जाना।"

कृतज्ञता प्रकाश करने का समय भी प्रताप को नहीं मिला, शोक-दुख में आच्छन्न-सा वह पीछे-पीछे चल पड़ा।

दाह-क्रिया शेष कर टैक्सी पर जब नितीन घर पहुंचा, तब रात आठकी घन्टी बज चुकी थी। बनारस कैण्ट में उसकी सुवृहत् अट्टालिका बंगला की तरह बनी हुई थी, सामने पुष्प-उद्यान, रसोई नीचे बनती थी। अट्टालिकाके प्रत्येक कमरे, दालान इंग्लिश कायदे से यथा विहित सज्जित थे। ड्राइङ्ग-रूम, डाइनिंग-रूम आदि ऊपर भी थे और नीचे भी। बाथ-रूम नीचे-ऊपर अनेक थे। अट्टालिका के पीछे नौकरों के कच्चे मकान। अधिकांश नौकर घर न जाकर वहीं पर रहा करते थे।

जब उसकी गाड़ी द्वारपर पहुँची—तब गृह का प्रत्येक अंश आलोक- उज्ज्वल हो रहा था। उद्यान के मध्य में संगमरमर-निर्मित अर्द्धनग्न नारी मूर्ति के दोनों हाथों पर बिजली के बल्ब जल रहे थे। तटस्थ दास-दासी द्वारपर एकत्रित थे। दुनियां में वह अकेला था, अगाध धन का स्वामी। यदि कोई नितीन

का साथी था तो वह थी शराब। दास-दासी, मित्र, बांधव को लेकर उसकी गृहस्थी थी।

स्मशान-यात्री की, पोशाक में नितीन कार परसे उतरा। प्रभुकी वेश-भूषा को देखकर भृत्यवर्ग चकित रह गये। नितीन उसी तरह खाली पैर, नंगे बदन गेट पर खड़ा-खड़ा मनीबेग ढूंढ़ने लगा और अपने खुले शरीर पर पाकेट की खोज करने जाकर स्वयं ही खिलखिला पड़ा। बेग तो कोट के पाकेट में प्रताप के घर पर ही रह गया था न।

वह सिर हिलाता हुआ आगे बढ़ा। नौकर दौड़ा-दौड़ा जूता लेकर पहुँचा। उसने सिर हिला दिया। नौकर इशारा समझ गया और वैसे ही जूते लिये हट गया।

दालान के एक ओर ऊपर जाने को सीढ़ी थी। नितीन सीढ़ियों को तय करता हुआ ऊपर अपने सोने के कमरे में पहुँचा। ड्रायर खोला—फिर तीन रुपये निकाल कर जमीन में फेंक दिये। ब्वायने शीघ्रता से उन्हें उठाया और टैक्सी का भाड़ा देने के लिये नीचे चल पड़ा नितीन के घर इसी प्रकार संकेत से काम काज चला करता।

और फिर चाभी ड्रायर में ही लगा छोड़कर वह बाथ-रूम में चला गया। स्नान कर स्लीपिंग सूट पहना, तब ऊपर के ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। इधर उधर जरा टहल कर कोच पर अधलेटा बैठ गया।

ब्वाय ने इस इशारे को समझा। ट्रेपर कांच के ग्लास, ह्विस्की

की बोतल, सोडा लेकर दौड़ा-दौड़ा पहुंच गया। तब ग्लास के बाद ग्लास डालता नितीन प्रफुल्ल मनसे सीटी बजाने लगा।

स्मशान का वह दृश्य—जिस दृश्य को देखकर उसको सुख-सेवित, उच्छृङ्खल मन कदाचित् एक बार रो भी उठा रहा हो—शायद—शायद, कौन जाने, शायद उस मनमें एक बार पल भर के लिये कोई गहरी भावना की छाया भी पड़ गयी हो; परन्तु इस समय उसके मनमें उस दृश्यकी हलकी छाया भी नहीं थी, सो तो शपथपूर्वक कहा जा सकता है। वहीं वरन् चौकके किसी सजे छज्जे पर वितीन के उच्छृङ्खल मनने उच्छृंखल नृत्य करना आरम्भ कर दिया हो तो विस्मय नहीं है।

बाहरके बरामदेपर घण्टी टनटना उठी। नितीनने टेबुल पर ग्लास रखकर द्वारके प्रति देखा। ब्वाय दौड़ा आया--"राय साहब आये हैं।" "अच्छा-अच्छा, उन्हें सलाम दो।" नितीन असम्भव रूपसे प्रफुल्लित हो उठा। अकेले बैठे-बैठे उसका जी घबरा उठा था। रायसे उसका परिचय अभी कुछ देर पहले स्मशानमें हुआ था।

मैली धोती, वैसाही कुरता पहने हुए राधारमण रायने कमरेमें प्रवेश किया। प्रवेक किया उसने बस--इतना ही। इसके बाद स्थानुवत् अचल-सा टेबुलका हैंडल थामे खड़ा-का-खड़ा ही रह गया। इस बैठे हुए धनी युवकके प्रति वह स्मशानसे लेकर रास्ता तक जो एक श्रद्धा लेकर आया था, उस श्रद्धाके प्रति उस शराब-भरे ग्लास ने जैसे अभिशाप का अमोघ

चम्म-सा पटक दिया। !नितीन को वह कालेज में देखा करता था। एम्-एस् सी का वह छात्र था, नितीन से निकट परिचय केवल उसी दिन स्मशानमें हुआ था,

"आओ यार !! वक्त से आखिर पहुंच ही गये। बैठो। अकेले बैठकर शराब पीने में मजा नहीं आता।"

राधारमण ने बैठने का प्रयास मात्र न किया और शायद अपने ही अनजान में कह उठा—"आप शराब पीते हैं?" उसके स्वर में विस्मय के साथ जो घृणा थी, उसे नितीन ने सुन कर भी न सुनना चाहा।

"हां-हां, आओ तुम भी पी लो।" विपुल उल्लास से कहा नितीन ने।

और इसके बाद राधा का हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठा लिया। मदिरा-पूर्ण ग्लास उसके मुंह से लगा दिया—"डरो मत। घर बैठे यह बादशाही आनन्द है।"

मन्त्रमुग्ध की भांति राधा का मुंह खुला और उस खुले मुंह में शराब चली गयी।

और तब चारों ओर वह आँखें पसार कर देखने लगा। धनवान हैं नितीन सो यूनिवर्सिटी के प्रायः सब छात्र जानते थे; परन्तु इस विपुल वैभव की कल्पना तो उनके लिये स्वप्न-सी अलीक थी न। राधा को लगने लगा—ऐसा उसने कभी देखा न था, सुना न था। ऐश्वर्य—ऐश्वर्य ऐसा ऐश्वर्य! उसे लगा—कमरे की कीमती चीजें, बिजली का प्रकाश तक उसके मैले-फटे वस्त्रों के प्रति परिहास से निहार रहे हैं, और

मखमल का कोच उसके स्पर्श से, घृणा से संकुचित हो रहा है। अपने आपके भीतर राधा ऐसा सिमट रहा कि अपने अस्तित्व पर उसे सन्देह होने लगा।

"लो, एक पेग और ले लो, क्यों, मैंने कहा था न कि मजा आवेगा।"

"माफ करो नितीन बाबू। आपके अनुरोध को मैंने टाला नहीं, लेकिन अब नहीं।" राधा सहम चुका था।

"एक पेग और लो यार।"

"नहीं भाई, मैं शराब पीना पाप समझता हूँ।"

"पाप समझते हो?" दुखी स्वरसे नितीन कहने लगा।

"तो मैंने बुरा किया। पहले अगर कह देते तो ऐसा होता ही क्यों? जिसे मैं बुरा समझता हूँ उसे कभी नहीं करता! माफ करो यार।"

उस माफी मांगने की रीति को देखकर राधारमण प्रभावित हो उठा। अत्यन्त विनय के साथ कहा राधाने—

"आप यह क्या कर रहे हैं! एक छोटी-सी बात के लिये ऐसी दीनता! कोई बात नहीं, आप संकोच मत कीजिये।"

"छोटी-सी-बात? लेकिन उसे पीना तो तुम पाप समझते हो न? फिर छोटी बात यह कैसे हो सकती है? अपने मत के विरुद्ध जाना अपराध है। परन्तु मैं तो तुमसे यही कहूँगा, कि किसी के अनुरोध, उपरोधसे मैं अपने मत व रुचिके विरुद्ध

कभी नहीं जा सकता। और उस जाने को मैं पाप नहीं तो कापुरुषता अवश्य ही समझता हूँ।"

बात साफ और सत्य थी—कटु सत्य। और उस नग्न कटु सत्य को सुनकर राधारमण की नसें अपमान से तन-सी गयीं; परन्तु, फिर भी वह क्रुद्ध होने के बदले इस शराबी युवकपर अधिक आकृष्ट हो गया।

"सत्य ही आप एक ऊँचे और उदार मनके आदमी हैं।"

निर्तीन मृदु-मृदु हंसने लगा—"एक नयी बात सुनाई तुमने। बस, अब बात नहीं, चलो भोजन करें, भूख भी जोर की लगी है।"

"आज मुझे माफ करें, जल्दी जाना है। रात हो रही है, घर में वे सब मेरे लिये उद्विग्न होंगी। परिचय हो गया है, फिर कभी आ जाऊँगा।"

"हां-हां, जरूर आना, और उस दिन हम साथ ही भोजन करेंगे।"

"अच्छी बात है। यह मनीबेग और कपड़े हैं, अग्रवाल जी ने भेजे हैं, साथ ही अनेक धन्यवाद भी।"

"धन्यवाद!"—निर्तीन पैर हिलाता हुआ धीमी हंसीके साथ गुनगुनाता-सा कहने लगा—"धन्यवाद—धन्यवाद फिर वही धन्यवाद!"

विस्मयसे राधाने निर्तीन को देखा, धीरे से बोला—

"माफ करें, परन्तु एक बात पूछे बिना जी नहीं मानता।"

"तो पूछो न। यह बार-बार अनुनय, विनय, क्षमा-माफी मुझे बुरी लगती है। एक नहीं—दो और चार बातें पूछो न। कहो—क्या कहते हो?"

"यही कि धन्यवाद कहने से आप हंसे क्यों?"

"क्यों हंसे? हँसने का भी कोई नियम, रीति है? वह तो मन की चीज है, चाहे जब बाहर निकल आवे। और मेरी बात? तो शायद इसलिये हंसा होऊँ। बात यह है कि इस धन्य-वाद शब्दको मैं सम्भावना की नजरसे कभी देख भी नहीं सका—उसे एक खेल ही समझता चला आ रहा हूँ। बैठो तो धन्यवाद, उठो तो धन्यवाद, हंस दिया तो धन्यवाद, अब तुम्हीं कहो कि ऐसे एक धन्यवादका मूल्य हम आंक ही क्या सकते हैं? पूछता हूँ—हर बातों में कह-कह कर इसे विरक्तिकर बनाया ही क्यों जाय?"

इस बात के बाद राधा एकदम विस्मय-विमूढ़ हो रहा, तबतक निर्तीनने दूसरा सिगार सुलगा लिया और केस राधा की ओर बढ़ा दिया—"बातों में ऐसा लगा कि तुम्हें सिगार देना तक भूल बैठा। लो।"

राधाके मुंहपर धन्यवाद आकर लौट गया। कहा इतना ही कि—"मैं सिगार नहीं पीता।"

"सिगरेट मंगवा दूं?"

"जी नहीं, यह सब कुछ नहीं पीता।"

"ऐसा? अच्छा-अच्छा, तो मत पियो। अन्धेरी रात है, पैदल कैसे जाओगे? कार पर चले जाओ।"

"जरूरत नहीं।"

"नहीं, तुम कार ही पर जाओ।"

न जाने क्यों राधारमण उस आज्ञा को टाल न सका। उसने नमस्कार किया और गाड़ी पर जाकर बैठ गया।

( ३ )

कड़-कड़-कड़—न जाने कौनसे देवता या दानवके कोपसे अथवा धरती की वक्र-कामनासे आकाशकी बिजली धरती की ओर लपक रही थी। कड़-कड़, झन-झन, मेघ कदाचित् आपस में युद्ध कर रहे थे। झड़-झंजा के साथ पानी की बूंदें आकाश के नीचे चू पड़ीं।

उसी आंधी-पानी में दोनों हाथों से छाता थामें राधा झड़ी-पानी से युद्ध करता नितीन के द्वार पर पहुँचा।

तब सन्ध्या होने में देर थी, नितीन चाय की टेबलपर बैठा था। ब्वाय पहुँच गया—"साब, राय साब आए हैं।"

"सलाम दो।"

राधा के निकट जब सन्देशा पहुँचा, तब वह बाहर के बरामदे में खड़ा-खड़ा विचार रहा था—कमरे में बिछी हुई कार्पेट पर वह कर्दमपूर्ण पैरों के जूतों से जाय या खाली पैर?

भृत्य का आह्वान सुनकर वह दृढ़ निश्चय पर पहुँच गया और तब जूते उतारने लगा।

विस्मय से ब्वाय ने उसे देखा, फिर बोला—"जूते पहने चलिये साब।"

"कीचड़ से कार्पेट खराब हो जायगी न।"

तब ब्वाय ने शीघ्रता से अपनी कमर में हाथ डाला और झाड़न निकालकर राधा के जूतों को पोंछकर साफ कर दिया।

चकित-पुलकित राधा भृत्य के पीछे-पीछे चला। आज वह साफ-सुथरे वस्त्र पहनकर आया था।

उसे देखकर नितीन ने प्रसन्न हास्य से सम्वर्द्धना की—

"आओ राधे! मैं सोच रहा था कि तुम भूल गये?"

राधा चेयर पर बैठ गया और धीरे-धीरे कहने लगा—

"अजी, नहीं। दो दिन आकर मैं लौट गया, आप इलाहाबाद गये थे।"

"आये थे क्या? कल वहाँ से लौटा। लेकिन यार, अब तो यह 'आप' और 'जी' का कहना छोड़ दो।"

"तुम कहूं? किन्तु—"

"बस-बस, अब किन्तु-परन्तु नहीं। समझे न?"

"अच्छी बात है। तो एक बात पूछूँ?"

"फिर वही आज्ञा के पचड़े में पड़ गये तुम। पूछो न, आज्ञा-आज्ञा कैसी। तुम-हम मित्र हैं और बस। पूछो-पूछो।"

"एकजामिनके वक्त तुम्हारा इस तरहसे घूमना मुझे अचम्भे में डालता है। लोग कहते हैं—" वह संकोच से चुप रह गया।

"तो परीक्षा के लिये मैं चैन-आराम छोड़ दूं?"

सिर हिलाता हुआ नितीन कह चला—"यह तो अपने ऊपर अत्याचार करना है। तुम देख लेना राधा, एकजामिन के

चार दिन पहले से—याने कल से मैं किस तरह पढ़ता हूं।"

"चार दिन पहले ? और इन्हीं चार दिनों में तुम तैयार हो जाओगे ?"

"चार दिन क्या कम हैं ?"

"न जाने तुम कैसे पढ़ लेते हो, सुना है हरवक्त फर्स्ट भी आते हो। मैं नियमित पढ़ता हूं, फिर भी थर्ड ही आता गया।"

"कोई बात नहीं, इस बार मार लो बाजी। क्या कह रहे थे ?"

"मैं ?"

"हां—तुम—तुम। कह रहे थे न, कि लोग कहते हैं ?"

राधा ने एक बार अप्रतिभ दृष्टि से उसे देखा और चुप रह गया।

"कहने का साहस नहीं है राधा ? तो जाने दो। अभी तुम बच्चे हो।" करुणा से नितीन का कण्ठ भर आया। और राधा के बुभुक्षित हृदय ने मानो उस करुणा को पी-सा लिया।

"सब कह रहे थे, उस पार्सी लड़कीको लेकर तुम इलाहाबाद भाग गये हो।"—राधिकारमण कहने लगा—

"मुफ्त में दुनियां तुम्हें बदनाम करती है।"

नितीनके उच्च हास्य से राधा ऐसा चौंका कि हाथ का बिस्कुट जमीन पर आ गिरा। नितीन के कहने से एक प्लेट जलपान लेकर वह भी बैठ गया था।

हंसी रुकी तो नितीन ने कहा—"यदि साथमें वह गई भी हो

तो हानि क्या है ?"

विपुल-विस्मयसे स्तब्ध राधा ने मस्तक नत कर लिया। इस व्यक्ति के प्रति विराग से उसका अन्तर पल-भर में विमुख हो बैठा।

"इसे मैं खराब नहीं समझता और फिर भागना तो कह ही नहीं सकता। अगर कोई स्त्री मुझसे लव करने लगे तो मैं भी क्यों न करूं ? और अगर वह इसे खराब न समझे तो मैं ही बुरा क्यों समझूं ? लव एक ऐसी चीज है कि उसका अपमान करना अपने आपका अपमान करना है।"

राधा जब बोल सका तब उसने यही कहा कि—

"चाहे उस प्रेमिका से शादी का रास्ता न भी हो ?"

"दुनियां में शादी ही एक बड़ी चीज नहीं है। सबसे ऊपर जो है, उसे हम लव कह सकते हैं।"

"तो ऐसे लवका मोल ही क्या रहता है ? आज किसी एकसे हमने लव किया, कल दूसरी, परसों तीसरी, और इसी तरह हजारों से लव करता फिरा। समझ में बात कुछ न आयी कि इसमें प्रेमकी कौनसी मर्यादा रक्खी गयी ? और इस अधूरे प्रेमको लेकर हमारी जिन्दगी पूरी भी कैसे हो सकती है ?"

"एक दो नहीं, हमारी जिन्दगी में जाने ऐसे कितने ही पद-चिह्न पड़ा करते हैं। कहां तक उनकी खबर रक्खो जाय परन्तु साम[illegible]गे आ जाता है, वही तब सत्य [illegible]

चाहे उस आये हुए लवका जीवन मिनट भरका ही क्यों न हो, लेकिन वह मिनट भर तो हमारे जीवनमें सत्य है न ? उस आये हुए प्रेमकी मर्यादाको रखना ही उसके सम्मान को बढ़ाना है। अगर दुनियां ही परिवर्तनशील है, प्रकृति नित-नवीनकी उपासिका है, तो हम मनुष्य उससे अलग रह ही कैसे सकते हैं ? प्रेम अधूरा है या पूरा, यह एक बड़ा प्रश्न है। यह तो अपना-अपना मत और दृष्टिकोण है।"

"परन्तु यदि एकसे शादीकर उसीसे जनम भर प्रेम किया जाय तो इससे कौन-सा महाभारत अशुद्ध हो जाता है ?"

राधाके उत्तेजित स्वरको सुनकर नितीन का मुंह दबी हंसी से भर उठा। कहा—"जो कि सर्वाङ्ग सुन्दर है उसे बन्धन में बांधना—याने उसकी पल-पलमें हत्या करनेके सिवा और क्या है ?"

"तुम-तुम यह कह क्या रहे हो ?"—राधा एकदम चिल्ला उठा।

"सत्य।"

"और इसे भी सत्य कहना चाहते हो।"

"जरूर। सत्य के सच्चे रूपको देखकर तुम चौंक रहे हो राधा ! क्या करोगे तुम, वह है ही ऐसी चीज। कह रहा था—समुद्र को अगर बांधके भीतर बांधा जाय तो स्वाभाविक गतिका गला घोंटना न होगा ? और तब उसमें बुद-बुद उठ ही कैसे सकेंगे ? उसका स्वाभाविक सौन्दर्य—बाढ़ और उत्ताल [illegible] आ ही कैसे सकेंगी ? उदासता तब उसकी रहेगी कहां ! जल-पू..."

हंसी रुकी तो—

संकीर्ण होकर रूप, सौन्दर्य उसका बिलकुल बर्बाद हो जायगा।"

"परन्तु बन्धनमें बंधकर भी यदि हम कुछ कर सकते हैं, अपनी शक्तिका विकास कर सकते हैं, तो वह श्रेष्ठ है या बन्धन-हीन दशामें ? यदि बन्धन-मुक्त समुद्र उत्ताल तरंगोंको उठा सकता है, तो इसमें उसकी निजी बहादुरी, श्रेष्ठत्व, भावना कौन-सी है ? बनमें जाकर तापसी सब बन सकते हैं, किन्तु घरमें रहकर तापसी बनना ही वास्तविक तापसीका काम है।"

"यहीं पर भूल कर रहे हो तुम राका ! जो सर्वाङ्ग सुन्दर है, उसे कोई बन्धन बांध ही कैसे सकता है ?"

"भूलमें तुम हो नितीन, प्रेम एक ऐसी चीज है, जिसे कि लोग बन्धनमें बांध लेते हैं, प्रेमिका अपने प्रेमीको इसी प्रेम-बन्धनसे बांध लेती है, माँ बच्चोंको, और दूर हो क्यों जाओ ? स्वयं भगवान भी प्रेमके पुजारीके दास बने हैं।"

"और, मैं भी तो यही कह रहा हूँ न, कि वह है भी स्वयं इतना सुन्दर कि सहज में वह दुनियां को अपना दास बना लेता है, असीम भी कभी बन्धनों में बंधा है ?"

गृह निस्तब्ध हुआ। कई पल बीत गये।

नितीन ने जमुहाई ली, पूछा—"क्या सोच रहे हो ?"

"तुम्हारी बातों पर विचार कर रहा था। ये बातें मुझे अद्भुत-सी लगती हैं।"

"सो लगेंगी ही, मुझे भी तो कई बातें ऐसी ही लगती हैं राधा !"

"किन्तु, फिर भी एक संदेश रह जाता है।"

"सो क्या ?"

"जो कुछ आप मुंहसे कहते हैं—शायद उसे आप मनसे न कहते हों।"

नितीन जी खोलकर हँसा—"तुम्हारा लड़कपन अभी गया नहीं। इन छोटी-छोटी बातों पर कहां तक विचार किया जाय ? चलो, जरा टहल आवें। कलसे मुझे पढ़ना है। बस—आज का दिन हाथ में है।"

"ब्वाय !"

शराब की बोतल लिये ब्वाय पहुँच गया और नितीन ने देखते-ही-देखते कई ग्लासें खाली कर दीं।

"कल भी और एकजामिन के दिन भी तुम शराब पियोगे ?"

"नहीं जी ! इसीसे आज बोतल खाली कर रहा हूं। चलो।"

फिर दोनों बाहर निकले।

(४)

वर्षा की बूँदे घनी नहीं थीं। कार पर बैठते-बैठते नितीन उतर पड़ा।

विस्मय से राधारमण ने पूछा—"बात क्या है ?"

"पैदल चलने को जी चाह रहा है।"

"पैदल ?"

"क्यों, पानी से डरते हो क्या ?"

"पानी से और मैं ? हमारे लिए तो आँधी-पानी और धूप बराबर है भाई।"

राधा के व्यथित शब्दों ने नितीन के मन में पल भर के लिए व्यथित श्वास भर दिया। परन्तु दूसरे ही क्षण वह अदम्य खुशी से कह उठा—"चलो-चलो।"

"किस तरफ चलना है ?" पथ पर चलते-चलते राधा ने पूछा।

"कहीं भी।"

दोनों— एक ओर चल पड़े। मोटर और जन-समुदाय की भीड़ ठेलते, चीरते-से वे दोनों चलने लगे। और आकाश पर तब मेघों ने विजय-दुन्दुभी बजा दी। घनी बूंदों को झोली में भरकर वर्षा पृथ्वी के हृदय पर अठखेलियां करने लगी।

"भींग गये राधा ! चलो—इस उस मकान की सीढ़ी पर खड़े हों।"

वचन-समाप्ति के साथ ही दोनों वहां जाकर खड़े हो गये। उस बृहत अट्टालिका के द्वार पर नितीन की दृष्टि सहसा पड़ गई। द्वार पर साइनबोर्ड लटक रहा था और बड़े-बड़े अक्षरों में उस पर लिखा था—

"स्त्रियों की व्यायाम-शाला।"

बात नितीन को अद्भुत-सी लगी—स्त्रियों की व्यायाम-शाला !

"यह व्यायाम का घर कब बना राधा ?"

"मैं कुछ नहीं जानता।"

"विचित्र बात है यार, व्यायाम मर्द ही किया करते हैं, अब तक यही जानता था, मगर अब औरतें भी पहलवानी करने लगीं। चलो, देखें—बात क्या है?"

"तुम भी जाने क्या बकते हो, भला औरतों के बीच हम मर्द जांय? फिर बिना काम?"

"निरे बुद्धू हो, काम और बेकामका प्रश्न ही क्यों उठाओ? कब, कहां पर कैसा काम लग जाय यह कौन कह सकता है?" पल भरमें उसका नूतनत्वग्राही मन इस नूतनपन को देखने, जाननेके लिए अधीर हो उठा।

राधाके निषेध करनेके पहले ही नितीनने द्वारकी जंजीर पकड़कर जोरसे हिला दी। मिनट भरके बाद परिचारिकाने द्वार खोला, पूछा—

"आप क्या चाहते हैं?"

"यह व्यायामशाला है?"

"जी हाँ।"

"और औरतोंके लिये?"

"जी हाँ।"

"और यहां का कोई मालिक भी है?"

"जी हां।"

"जी हां, के सिवा और भी कुछ जानती हो?"

विस्मित-क्रोध से दासी उन्हें निहारने लगी।

शीघ्रता से राधा बोला—"बात यह है कि हम पूछना चाहते हैं कि व्यायामशाला स्त्रियों की है या मर्दों की ?"

"कह तो रही हूँ—स्त्रियों की है। यहां की अध्यक्षा बांसुरी देवी हैं।"

"वंशी देवी ? तो मैं उन्हीं वंशी देवी से मुलाकात करना चाहता हूँ।"

वह भीतर चली गयी और अल्प समय में लौट आई, पुकारा—आइये।"

आह्लादसे नितीनने अन्तःपुरमें प्रवेश किया, क्षुब्ध, विस्मित राधारमण उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

कमरेमें बैठाकर दासी चली गयी। कमरे की बड़ी-बड़ी खिड़कियां और दरवाजों पर मोटे साधारण परदे, टेबुल, कई कुरसियां, किताबोंसे भरी दो आलमारियां—बस कमरेमें इतना ही था।

दासीके जानेके बाद नितीन से राधा कुछ कहने ही जा रहा था कि ठीक उसी समय द्वारका परदा हिला और परदे को हटाकर एक स्त्रीने कमरे में प्रवेश किया।

उस श्वेत वस्त्र-परिहिता अर्द्धवयसी स्त्री को मित्रद्वयने नमस्कार किया।

प्रति नमस्कार वह चेयर पर बैठ गयी—"किस काम से आप महाशयों का शुभागमन हुआ है ?"

यही अर्द्धवयसी, कुरूपा स्त्री बांसुरी है ? और इसी को

देखने के लिए बाहर की ताजी हवा को छोड़कर मैं यहां दौड़ा आया हूँ ?—पल-पल में विचार नितीन के मन में उठने लगे—परन्तु इस कुत्सित नारी का नाम बांसुरी हो हो कैसे सकता है ? नितीनके मनमें अपने आप प्रश्न उठा और उस बाँसुरी नाम रखनेवाले पर उसे क्रोध हो आया, वैसे ही रूखे स्वरसे प्रश्न कण्ठसे निकल पड़ा—"आपही हैं वंशी देवी ?"

"वंशी नहीं— बांसुरी कहिये। नहीं। मैं यहां की सेक्रेटरी हूं, वह तो अध्यक्षा हैं।"—स्त्री जरासा हँसी-सी।

नितीन का मन आनन्द से भर गया—तो यह भूतनी इस मीठे नाम की अधिकारिणी नहीं है।

फिर बात यह है, कि एक नाम ही पर नितीन क्यों मोहित हो गया ? वह नाम वह मोहक, मीठा नाम—जिस नाम पर राधा एक दिन उन्मादिनी हुई थी, वही नाम—जिस नाम पर आज भी हिन्दू मात्र पागल हो उठते हैं, उस नाम को सुनकर नितीन क्यों बावला हो उठा, यह समझना जरा कठिन है।

खुशी उसकी आकृति की विरक्ति पर जयी हो गई और बस उसी क्षण कहा नितीन ने—"मैं उनसे मिलना चाहता हूं।"

"तो आपको जरा बैठना पड़ेगा।"

"बाहर गयी होंगी ?"

"व्यायाम-शाला में गयी हैं, अभी लौटेंगी।"

"व्यायाम-शाला यहां से दूर है ?"

"नहीं। इसी मकान से लगी हुयी है।"

"कितनी औरतें सीखती हैं ?"

"अभी तो शुरुआत ही है। फिर भी छोटी-बड़ी सब मिला कर दो-ढाई सौ हो गयी हैं।

"इतनी ?"

"जी हां। कितनी ही विधवायें भी यहां रहती हैं।"

"इतना खर्च कौन देता है ?"

"कई पृष्टपोषक हैं इसके। जब हमारी—बांसुरी देवी अपनी नयी सूझ लेकर दुनियां के सामने आयीं, तो दुनियाँ ने भी उसका हृदय से स्वागत किया।"

"यहां क्या क्या सिखलाया जाता है ?"

व्यायाम, शरीर-रक्षा के नियम, लाठी चलाने के हरएक नियम व्यायाम के अन्तर्गत हैं और सत् साहस।"

"साहस ? साहस भी इस युग में सीखने की चीज बन गई है ?" नितीनके उस परिहासको स्त्रीने सुनकर भी न सुनना चाहा, कहा—"वह मनकी चीज जरूर है, परन्तु महाशय, पारिपार्श्विक स्थिति में घिसकर कभी उसे विकीर्ण होने में अड़चन भी पड़ जाती है और आग को तेज करने के लिए जैसी हवा की जरूरत पड़ती है। आप तो जानते ही होंगे—पहले कभी राजपूतों के मन में वीर रस भर देने के लिये चारणगण वीरगाथा सुनाया करते थे। इस शाला में वीर-रस की प्रधानता है। अच्छा, तो आप तब तक दैनिक, मासिक, साप्ताहिक पत्र—जो जी

चाहे पढ़िये उस कोने की टेबुल पर हैं। मैं जरा काम से जा रही हूं।"

स्त्री उठकर चली गई।

नितीन उठकर कोने की टेबुल पर गया। विस्मय से पत्रिकाओंके ढेर के प्रति देखा और एक पत्रिका हाथ में लेकर पढ़ने लगा।

राधिकारमण के बुलाने पर नितीन पीछे लौटकर देखने लगा और देखता ही रह गया, एक फूल-रानी-सी अनुपम सुन्दरी,—युवती, मोटी साड़ी वैसा ही ब्लाऊज पहने, मोटी, लाल कांचकी चूड़ी हाथ में डाले सामने के चेयर पर बैठी, स्मित हास्य से उनके आगमन का कारण पूछ रही थी।

उस रूप को देखकर नितीन स्तब्ध हो रहा। सुन्दरी उसने अनेकों देखी थी, वह वेश्यासक्त था, वेश्यालय उसके लिये घर-द्वार जैसा था, नित-नवीन का वह उपासक था, किंतु उसे लगा—ऐसा रूप उसने कभी नहीं देखा था। वरन् उसकी कल्पना भी वहां मूक-बधिर थी।

देखा नितीन ने और देखता ही रह-गया। सहसा उसका जी मचल पड़ा—उस रूप को दोनों हाथों से निःशोषित करने के लिए, अस्त, ध्वस्त, मथित करने के लिए।

अधिक आश्चर्य तो यह है, कि वैसे तो सहसा उसका उच्छृङ्खल चित्त संयत भी हो गया—शायद जीवन में प्रथम बार ही। न जाने उस सन्दर आकृति में ऐसा कौन-सा

प्रभाव, कौन-सा व्यक्तित्व, कैसा वीरत्व था, जिसने नितीन जैसे युवक को भी भद्र व्यवहार करने को बाध्य कर दिया।

"आप ही बाँसुरी देवी हैं?" भद्रभाव से उसने पूछा।

"हां महाशय और आपका प्रयोजन?"

"मेरा?" मिनट भर में सप्रतिभ भाव से नितीन ने उत्तर दिया—

"मेरी छोटी बहन व्यायाम सीखना चाहती है।"

उस उत्तर को सुनकर राधा अवाक् रह गया। वह जानता था दुनियां मे नितीन अकेला है।

भीतर से तीन बार गम्भीर घण्टा निनाद हुआ।

बांसुरी उठकर खड़ी हो गयी—"कल दोपहर में आप उसे भेज दीजिये। आज मुझे समय नहीं है। और भी आप जो कुछ जानना चाहते हैं, सो कल कह दूँगी।"

"लेकिन कल से मेरा एकजामिन शुरू होगा।"

"तो परीक्षा के बाद आप आ सकते हैं।"

बाँसुरी की ऐसी उदासीनता नितीन को भली न लग सकी, बाँसुरी ने यह कुछ न पूछा कि कौन-सी परीक्षा, रहता वह कहां पर है, नहीं, कुछ नहीं। वरन् एक उपेक्षा के साथ कह दिया पीछे जान लेना।

एक प्रकार अयाचित रूप से ही नितीन को तब कहना पड़ा—"अच्छा तो, एकजामिन के बाद ही आऊँगा।

एम० ए० की परीक्षा बिलकुल बाद में भी तो रख दिया है न। बड़ी मुश्किल है। वैसी ही कड़ी धूप। हजार मोटर पर गया तो क्या। जानती ही हैं आप, कि यहां कैसी लू चलती है, दिन आठ बजे के बाद खसकी टट्टी और पंखा को छोड़ा ही नहीं जाता।"

बाँसुरी हँसी—"तो परीक्षा के बाद आइये, और बहन को भी तभी साथ लाइयेगा। अच्छा, नमस्कार।"

अगत्या नितीन को अनिच्छा से विदा लेनी पड़ी।

[ ५ ]

अमावश्या की अँधियारी उस संध्या बेला से पृथ्वी पर झुक रही थी—मानों पृथ्वी के धूलिकण ही उसे सबसे अधिक प्रिय हैं, सो वह अपनी विकराल, काली बांह बढ़ाये दौड़ी चली आ रही थी इस तरह—जैसे कि वह अपनी प्रिय सहचरी पृथ्वी को आलिङ्गन करना चाह रही हो।

और उसी अंधकार में नितीन दुर्गाकुण्ड के उस पार से बढ़ता चला जा रहा था, हाँ—पैदल ही। अपनी कार वह उस दिन वासुदेव को दे आया था। वासुदेव की प्रबल आपत्ति के मुख में उसने कह दिया था—"यार मेरे लिए फ़िक्र मत करो, जरा चलकर टैक्सी ले लूंगा। इस वक्त कार की मुझसे ज्यादा जरूरत तुम्हें है। तुमको जोर का ज्वर है। बैठो और मजे में घर चल दो।"

शराब के नशे में मस्त झूमता हुआ नितीन चला तो

चलता ही गया और कब तक वह चलता रहता सो कहना भी कठिन है, वह चलता ही जाता शायद,—यदि नारी-कंठ का भयार्त्त चीत्कार उसे अपनी ओर आकर्षित न कर लेता।

नितीन ने उस चीत्कार को सुना और सीधा होकर खड़ा हो गया, उस अंधकार के हृदय को चीरकर कुछ देखना चाहा फिर उस ओर दौड़ पड़ा, जहां से आवाज आ रही थी। टार्च के प्रकाश में उसने देखा साइकिल एक ओर पड़ी है और एक युवती को कई गुण्डे घसीटकर ले जाने का प्रयास कर रहे हैं।

नितीन का रक्त उबलने-सा लगा। स्वयं वह चरित्रहीन था, मद्यप था—सो ठीक है, परन्तु फिर भी न जाने क्यों उस दृश्य को देखकर वह रोमांचित हो उठा। क्षुधित व्याघ्र-सा वह उन गुंडों पर टूट पड़ा। नशे पर क्रोध ने विजय पाई।

"मैं पहुँच गया बहन, घबराना मत।" उसने चिल्लाकर कहा।

बदमाशों ने युवती को छोड़कर उसकी ओर बढ़ना चाहा और वैसे ही सहसा वे भाग निकले। नितीन एक को वज्रप्रहार से धराशायी करते हुए दूसरों के पीछे दौड़ा। परन्तु वे भाग ही गये।

नितीन जब लौटा तब आहत व्यक्ति उठकर भाग चुका था, और युवती भय से खड़ी-खड़ी काँप रही थी।

नितीन ने टार्च के प्रकाश में उसे देखते हुए कहा—

"ऐसी अंधेरी रात में कहां जा रही थीं ?"

"घर।" वह बोली।

"बाइसकिल पर अकेली, विशेषतः इस अन्धकार-पूर्ण रात में अकेली क्यों जा रही थीं ?"

दो-चार व्यक्ति और भी पहुंच गये। लालटेनें भी आ पहुंची।

एक ने कहा—"ऐसी अंधेरी रात में लड़कियों को अकेली चलने की जरूरत ही क्या है ?"

अचानक नितीन गरज उठा—"क्यों न जांय ? स्वाधीनता के इस युगमें भी क्या आप चाहते हैं औरतें पर्देमें बन्द रहें ?"

"उसीका तो यह फल है महाशय। यदि आप वक्त से न पहुँच जाते तो इनकी क्या दशा होती ? कहिए, अब चुप क्यों हैं ?"

"यह कसूर सरकार का है, ऐसी जगहों में पुलिस का रहना जरूरी है।"

"वाह भाई खूब ! स्त्रियां स्वाधीन हों, रात में साइकिल पर घूमा करें, किन्तु साथ में बाडीगार्ड हों। क्या इसे भी आप स्वाधीनता कहेंगे—जिस स्वाधीनता की नींव ही कच्ची है ?"

"नींव और कच्ची ?"

"नहीं तो क्या ? स्त्रियां, स्वाधीन तो होना चाहती हैं, लेकिन अपने आपकी रक्षा नहीं कर सकतीं, इसे आप स्वाधीनता कहेंगे या आत्महत्या ?"

"ये अबलायें, कमजोर बेचारी अपने-आपकी रक्षा कर ही कैसे सकती हैं ? फूल जैसी नरम तो हैं ये। और फिर हम किस लिये हैं ? इनका सम्मान, इज्जत अगर हम मर्द न रख सके तो हमारे लिए शर्म की बात है।"

"आपका आर्गूमेन्ट उलटा है। स्वाधीनता की मांग यदि उनकी है तो उस स्वाधीनता की सम्मान के साथ रक्षा भी उन्हें ही करनी चाहिये। स्वाधीनता एक चीज है और उच्छृंखलता दूसरी। रात के वक्त इन्हें निकलने की जरूरत क्या है ? दूसरी बात रही अबला वाली। सो मैं कहता हूँ अबला कहकर कुछ है ही नहीं।"

"वाह यार खूब कहा।"—नितीन परिहास से हँसने लगा।

"आप हँसते हैं ?"—कहने लगा वह व्यक्ति—"किन्तु इसमें हँसने की बात कुछ भी नहीं है, है विचार करने की। स्त्रियां अबला नहीं हैं, हम मर्द की भाँति सबला हैं। यदि नहीं हैं, तो हो सकती हैं।"

"सो कैसे ?"

"वे व्यायाम क्यों न करें ? वे भी अपने को इस तरह से तैयार क्यों न करें कि रास्ते-घाट में गुण्डों के हाथ से वे स्वयं अपने को बचा सकें ?"

"व्यायाम ?" परन्तु हँसने जाकर भी नितीन इस बार न जाने क्यों हँस न सका और सहसा उसका अवनीति चित्त गत दिन के उस व्यायामशाला से लौटकर कुछ विनीति-सा हो

उठा। उस व्यक्ति से कहा उसने कुछ नहीं, तरुणी की ओर लौटकर बोला—"चलो, तुमको घर तक पहुँचा आऊँ।"

"धन्यवाद महाशय। किन्तु अब मैं स्वयं ही जा सकूंगी। और यदि आप कल दस मिनट के लिये मेरे घर आवें तो बड़ी कृपा होगी।"

"क्यों भला?"—नितीन ने पूछा और भीड़ से जरा हटकर खड़ा हो गया।

युवती उसका अनुसरण करती हुई बोली—माँ, बाबूजी आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।"

नितीन सहसा ऐसे जोर से हँस उठा कि केवल तरुणी ही नहीं, वरन् छत्रभंग जनता भी एक बार चौंक कर लौट पड़ी।

"वही धन्यवाद का झमेला! लेकिन मुझे अगर उसकी जरूरत ही न हो तो?"

तरुणी खिसियानी-सी बोली—"आपके पास चाहे धन्यवाद का मूल्य कुछ भी न हो, किन्तु आजका सभ्य जगत तो उसी का पुजारी बना बैठा है न? शिक्षित मात्र को इसे मानना पड़ेगा।"

"और अगर मैं गवाँर, अपढ़ होऊँ तो?"

तरुणी ने उसे अवहेलना से देखकर कहा—"अच्छी बात है।"—वह साइकिल पर बैठ गई।

"ठहरो—जरा"—उसे रोककर पूछा नितीन ने—

"तुम्हारा नाम?"

उस पूछने की रीति से तरुणी ऐसी चिढ़ी कि अभी-अभी नितीन ने जो कुछ उपकार उस पर किया था—उसे भी भूल बैठी—"वास्तविक आप असभ्य हैं। भद्र व्यवहार करना नहीं जानते। अभी आप उन लोगों को गुण्डा कह रहे थे न ?" क्रोध से उसके नेत्र चमक रहे थे।

"कह तो रहा था।" कौतुक हास्य से कहा नितीन ने।

"मेरे विचार से आप भी·········"वह चुप हो गई।

उत्साह के साथ कह उठा नितीन—"फर्क है-फर्क फिर भी जरा-सा फर्क है हो। मै कहता हूँ है! क्यों? क्योंकि मैं बदमाश हूँ, लेकिन कभी किसी औरत से जोर-जबरदस्ती नहीं करता। अवाक् होकर देख क्या रही हो? मैं सच कह रहा हूं, किसी के अमत से उससे कभी नहीं बोलता। और तुम? चेहरा तुम्हारा मुझे अच्छा लग गया है, इसीसे मैंने नाम भी पूछ लिया।

असीम क्रोध-अपमान से तरुणी का स्वर कण्ठ ही में मूर्छित-सा हो रहा। घृणा से उसने मुंह फेर लिया।

"चिढ़ गयीं? मगर सवेरे अगर जाऊँ भी तो कहाँ? कुछ पता भी कहो।"

और ठीक उसी पल में विपुल गर्वने तरुणी का चित्त आछन्न कर लिया—"राय बहादुर सीतानाथ का घर एक बच्चा भी आपको बतला देगा।"

"अच्छा, तो तुम हो उनकी एकलौती लड़की कुमारी माधवी

बी० ए० हो ? अच्छी बात है। कल शायद मैं पहुँचूं।"

अत्यन्त विस्मय से तरुणी ने देखा कि उसका वैसा परिचय सुनने के बाद भी उस असभ्य व्यक्ति का तिलमात्र परिवर्तन न हुआ।

तरुणी साइकिल पर बैठी और सीटी बजाता नितीन एक ओर को चल दिया।

( ६ )

एम० ए० परीक्षा का अन्तिम दिन था। लू जोर से बह रही थी। बारह बजे परीक्षा का अन्तिम पेपर शेषकर नितीन प्रफुल्ल मुख से बाहर की सीढ़ी पर आकर खड़ा हो गया। छिन्न मलिन छाते को सिर पर ढाँके वासुदेव साइकिल पर बैठ रहा था।

नितीन बाज की तरह उस ओर झपटा—"वाह यार, चले क्या ? ठहरो तो जरा, कैसे पेपर किये ? जल्दी क्या है ?"

वासुदेव निकट पहुँचा—"जल्दी जाना है नितीन। माँ को जोर से बुखार चढ़ा है, बहन अकेली है।"

"माँ को बुखार चढ़ा है ? बहन अकेली है ?"—न जाने नितीन को कौन-सी बात स्मरण हो आयी, वह मृदु-मृदु हँसने लगा।

"हाँ है न।"

"कितनी बड़ी ?"

"यही दस, ग्यारह वर्ष की।"

अपने-आप सिर हिलाता हुआ नितीन कहने लगा—

"बस-बस ठीक है।"

वासुदेव ने उस बात को सुना-न सुना साइकिल की ओर लौटकर बोला—"अच्छा तो नितीन जा रहा हूं, माँ बीमार हैं।"

नितीन ने उसका हाथ पकड़कर खींचा—"बैठो-बैठो, गाड़ी पर बैठ जाओ। तुम्हें घर पहुँचा दूं और माँ को भी देख लूं।"

विस्मय से वासु ने उसे देखा और तभी-तभी अपनी दीन-दशा के स्मरण से संकोच के साथ बोला—

"क्या करोगे जाकर ? मैं साइकिल पर ही चलूं न ?"

"नहीं यार, चलो।"

वचन शेषकर उसने एक प्रकार जबरन वासु को कार पर बैठाया और मोटर स्टार्ट कर दी। ड्राइवर से कहता गया—"साइकल इनके घर पहुंचा दो।" फिर हंसकर बोला—"आखिर तुम इस तरह मुंह बनाकर क्यों बैठे हो ? माँ बीमार हैं, वे अच्छी हो जायेंगी, रास्ते से डाक्टर को भी लेता चलूंगा।"

"डाक्टर ?" वासुदेव सिहर उठा—पेट के लिये जिसे पर्याप्त अन्न नहीं मिलता, मान-रक्षा की कौन कहे—शरीर-रक्षा के लिये जिसे एक टाट का टुकड़ा भी नहीं मिलता—उसके लिये डाक्टर का स्वप्न ? सपना नहीं तो क्या है ?—उस जैसे के लिये रोग में दवा-पथ्य तो निरा सपना ही है न ?

"अभी—आज माँ को बुखार आया है। पहले दिन दवा देना ठीक नहीं। कल मैं डाक्टर को ले जाऊंगा।"

"अच्छा बात है। कल ही सही। मुझे भी आज जल्दी जाना है। मगर यार,—एक बात तो सच कहो—तुम ऐसे निर्जीव क्यों रहते हो? ऐसी जवानी और इस तरह से बूढ़ों जैसा रहन-सहन।"

"मैं?"—वासुदेव ऐसा चौंका कि नितीन को कम विस्मित न होना पड़ा!

गाड़ी भागी चली जा रही थी।

"यहीं-यहीं—रोको, नितीन।"

नितीन ने आकुल-विस्मय से मित्र की ओर देखा। उसका स्वर नितीन को एक आर्त चीत्कार-सा लगने लगा।

नितीन ने सामने की ओर देखा—ईंटों का का स्तूप विशेष सामने खड़ा है।

और जब वासुदेव ने कहा—'आओ' तब नितीन ने किया किया इतना ही कि बेसमझ की तरह अपने वृहत् नेत्रों की दृष्टि उसके मुखपर आबद्ध कर दी।

"आओ नितीन, मां को देखने न चलोगे?" सहज और परिष्कार स्वर से कहा वासुदेव ने।

"चलो-चलो।"-और तब वासु को टेलता-सा नितीन उस स्तूप पर चढ़ने लगा।

"वहाँ कहां जाते हो?"

वासुदेव चला। और जब ईंट की बाईं ओर से ईंटों का लांघता हुआ वासु के पीछे वह अग्रसर हुआ, तब उसे

लगने लगा—दुनियां का आठवां आश्चर्य उसके नेत्रों के सामने उपस्थित है। टूटे-फूटे दो कमरे-जिनकी दीवारें वर्षा और दीमक से विवर्ण हो रही थीं, बड़ी-बड़ी खिड़कियां—और द्वार के चौखट मात्र अवशिष्ट थे, द्वार की जगह पर मैले, फटे चीथड़े लटक रहे थे। पक्की जमीन के बड़े गड्ढों को ईंट द्वारा पूरा गया था। बस, उस ईंट-काठ के स्तूप में—यही था वासुदेव का आवास-स्थान।

कदाचित किसी दिन वह अट्टालिका संपद, ऐश्वर्य से इंद्रपुरी तुल्य रही हो, कदाचित कभी—एक दिन वह अट्टालिका रूप-यौवन से राज-प्रासाद की समानता करती रही हो परन्तु उस दिन रहा है, उसका शेष-केवल ईंटों का स्तूप मात्र।

"भैया,-दूध लाये हो न ? मां दिनभर की भूखीं हैं।"

एक नौ वर्ष की बालिका टूटी खिड़की के गले चौखट को खींचती हुई बोली।

कदाचित इन्हीं खिड़की-दरवाजों की लकड़ी अब उस परिवार की रसोई बनाने में सहायता करती हो।

"श्यामा, देख ये कौन आये हैं।"

श्यामा ने श्यामवर्ण, भोला मुख उठाकर नितीन को देखा फिर दौड़ी-दौड़ी भीतर चली गयी।

"अब तक तुमने मुझसे छिपाया क्यों वासु ?"

उस इष्टक-स्तूप पर हाथ धरे खड़ा था नितीन और पैर

अंगूठे से मिट्टी खोदता हुआ खड़ा था वासुदेव—एक अपराधी जैसा।

"छिपाया मैंने ?"

"हां—तुम्हीं ने वासु।"

"और यदि दरिद्र अपनी दरिद्रता को दुनियां की आंखों से छिपाकर ही रखना चाहे तो ?"

"इससे उसे हानि ही पहुंचेगी, लाभ नहीं।"

"परन्तु—"सहसा वासु चुप हो रहा।

जरा ठहरकर नितीन कहने लगा—"किसी दिन यहां पर सुख-ऐश्वर्य की लक्ष्मी पछाड़ें खाया करती थी—सो तुम्हें और इस टूटे मकान को देखकर अनुमान किया जा सकता है, मगर मुझे विस्मय इस बात पर है कि तुम अपनी इस गिरी हुई दशा को सुधारने की कोशिश क्यों नहीं करते ? इस तरह बेकाम क्यों बैठे रहते हो।"

"करूं क्या ?"

"क्यों, नौकरी।"

वह उदास हंसा—"वही तो कह रहा हूँ—दुनियां मेरी बातों को न समझेगी।"

"ऐसा ?"

"हाँ ऐसा ही। वर्षों से चेष्टा कर रहा हूँ।"

"नहीं मिली ?"

लांघ "नहीं। और न मिलने की आशा है। नीचे क्लासों को

मास्टरी के लिये भी हजार-पांच-सौ आवेदन पत्रों की भरमार रहती है—सो भी एम० ए० एल-एल० बी०-की। फिर मुझे पूछता कौन ?"

"लेकिन एम० ए० पढ़ने का खर्च कैसे चलाते हो ?"

"सुनना ही जब चाहते हो तुम, तब सुनो। माँ-बहनों को उपवास कराकर और उन्हीं के जेवर बेचकर।"

"ऐसा क्यों करते हो वासु ?"

वासुदेव ने उस स्तूप की ओर उंगली उठाकर कहा—

"केवल इसका सम्मान रखने के लिये।"

"इसका सम्मान रखने के लिये ! इस ईंट के ढेर का ?"

"हाँ नितीन ! इसी ढेर के हृदय में जो प्रतिष्ठा, सम्मान बसा हुआ है, उसका अपमान कभी और किसी भी दिन कैसे कर सकता हूँ ? इसी ढेर ने मेरे हाथ-पैर को मजबूत बन्धन में बाँध रक्खा है। मजदूरी भी नहीं कर सकता न।"

"क्यों ?"

उसने फिर अँगुली उसी ओर उठाई—"इसी के लिये।"

"और यदि मैं कुछ देना चाहूं ?"

"नहीं ले सकता।"

उसने इसबार हृदय पर हाथ रखा—"वह केवल इसके सम्मान के लिए।"

"समझा"—नितीन का सदा प्रफुल्ल मन न जाने क्यों उदास हो गया।

"तुम्हारे लिए नहीं। परन्तु अगर श्यामा और मां के लिये—"

"नहीं-नहीं।"—बीच ही में कह उठा वासु—"नहीं! आत्म-मर्यादा को खोकर जीना उपहास के सिवा और कुछ नहीं है नितीन।"

"जाने दो। लेकिन सिर्फ श्यामा के लिए भी तो मुझे जरा सोचने दो।

"सो कैसे ?" — देर बाद वासु ने पूछा।

"मैं उसे व्यायाम सिखलाना चाहता हूं। नाहीं मत करो। वह मेरी भी बहन है। तुम्हारी मां को मैंने भी माँ कहा है। सुना है न तुमने ? असम्भव है ? नहीं, मैं कहता हूं सम्भव है, स्त्रियों का व्यायामघर खुला है। उसमें श्यामा व्यायाम सीखेगी। बस चुप रहो, कल सबेरे मैं उसे ले जाऊंगा। भर्ती वह कल ही हो जायगी। अच्छा, चलो।" नितीन कार पर बैठ गया। और वासुदेव ने अंदर प्रवेश किया।

ज्वर से काँपती हुई माता तब कम्पित हाथों से भाजी तोड़-तोड़कर झोली में रख रही थीं। गिरे मकान में कूड़े-कर्कटों के बीच घास-पात और भाजी भी निकल आई थी।

"मां-मां, यह क्या कर रही हो ?" वासुदेव ने कठोर स्वर से पुकारा।

नम्र-शान्त विनीत पुत्र को हठात् उग्र होते देखकर माता चकित हुईं।

"तुम लोग मुझे मुंह दिखलाने लायक भी न रखोगे।"

वह बोला इस तरह मानो उसकी चोरी दुनियाँ के सामने सहसा प्रकाशित हो गयी हो।

माता आकुल-विस्मय से पुत्र का मुंह निहारतीं रह गयीं।

वासु कह चला—"उस निर्लज्ज छोकड़े से, उस विलासी घमण्डी छोकड़े से कहने की तुम्हें क्या जरूरत थी?"

"मैंने? किन्तु मैंने तो कुछ भी नहीं कहा वासु।"

"कहना नहीं, तो यह क्या है? बुखार से खुद मर रही हो। बून्द भर दवा पेट में नहीं गई, न साबूदाने के दो दाने ही। तुम्हें क्या जरूरत थी कि भरे बुखार में भाजी तोड़ती फिरो?"

"फिर सूखा भात तेरे सामने कैसे रख दूँ वासु?"

माता के आँसू बून्द-बून्द कर चू पड़े और इसके बाद आँसू की झड़ी सी लग गयी—झर-झर-झर-झर।

और तब वासु? तब वासु एक चोर की भांति, एक अपराधी की भाँति दौड़ता हँसता बाहर की ओर निकल भागा। किन्तु ईंटों ने बाधा दी। ठोकर खाकर वह गिर पड़ा, माता दौड़ीं; पुत्र को हृदय से लगाकर वहीं पर बैठ गयीं।

( ७ )

उस दिन पृथ्वी की वज्रकामना सफल हो चुकी थी। वज्राघात से पृथ्वी मरती हुई भी अपने वन्ध्यत्व का मोचन कर चुकी थी। आकाश में था मेघों का विपुल झंझावात और

पृथ्वी पर विराम-हीन वारिपात, एवं धरती के स्तन से विराम-हीन वारिपात, एवं धरती के स्तन से विराम-हीन दुग्ध का उत्स।"

नितीन की कार मानों इन सबका उपहास करती हुई श्री व्यायामशाला के द्वार पर रुकी।

उस छोटी सी लड़की श्यामा का हाथ थामें-थामें वह कार पर से उतरा।

प्रवेश द्वार ही पर मिल गयी वह स्वर्ग की किन्नरी बाँसुरी।

"आइये।" बांसुरी बाहर जाने से रुक गई।

नितीन ने नमस्कार किया।

"उस दिन आपही आये थे न?"

"हां, यह मेरी बहन श्यामा है।"

"मीठी लड़की। आओ बच्ची। इसे आप भरती करना चाहते हैं न?"

"नहीं तो क्या वंशी देवी, आप समझती हैं—मैं मजाक करने आया हूं?"

बाँसुरी ने कदाचित उसे एक बार तरल विस्मय से देखा न देखा। स्मित हास्य से बोली वह—"कभी नहीं। तो इसे आप भर्ती कर दीजिये। यह है यहां का नियम-और यदि आप स्वयं आश्रम के काम-काज, नियम, उद्देश्य देखना चाहें, जानना चाहते हों, तो मेरे साथ चले चलिये।"

नितीन उठकर खड़ा हो गया, अदम्य कौतुक से बोला—"चलो।"

"दो मिनट ठहरिये।"

टेबिल पर रखी हुई छोटी पीतल की घण्टी बाँसुरी ने बजाई। सादा वस्त्र परिहित मूर्तिमयी विराग-सी एक स्त्री सामने आकर खड़ी हो गयी—"आदेश?"

"यह महाशय आश्रम देखना चाहते हैं।

"आइए।"

युवती के पीछे-पीछे नितीन चल पड़ा।

और जब प्रायः आध घन्टे के बाद नितीन परिहास की हँसी लिए-लिए लौटा, तब बाँसुरी शाला में बने कई प्रकार के साबुन आदि देखने में ऐसी लीन थी, कि उसका आना वह जान तक न पायी।

"वाह-वाह वंशी, व्यायामशाला क्या है आपका, यह तो खासी मजदूरी का इन्तजाम है। और वह भी—औरतों से।"

बाँसुरी सहमकर बैठ गई; धीमे स्वर से बोली—"सब देख आये हैं न आप?"

"सब-सब।" सिर हिलाता हुआ नितीन कहने लगा—"लाठी की कवायद से लेकर कुश्ती लड़ना, मुग्दर भाँजना सब देखा। व्यायामशाला के लिए यह सब ठीक है, लेकिन उस चक्की पीसने से लेकर बीड़ी बनाना, जाम-जेली, चटनी आदि बनाना सिलाई, बुनाई, इन सबों का मतलब तो कुछ और ही निकलता है।

"यानी?"

"मैंने देखा—मिट्टी की उस बड़ी परछी में बहुत सी-चक्की गड़ी हैं और वहाँ औरतें अनाज पीस रही हैं। दूसरी परछी में जाम-जेली, मुरब्बे अचार बना रही हैं। कमरों में दियासलाई बीड़ी, तो कहीं कुछ बन रहे हैं, कहीं पर चरखे भी काते जा रहे हैं, दरी और गमछे भी तो स्त्रियां ही बना रही हैं। चमड़े के काम भी बहुत ही भले बने हैं। लेकिन वह पुरानी साड़ियों की किनारों का भी आपने अच्छा उपयोग किया है। कैसे मजे की दरी, आसन बनी हैं, और मूंज के पंखे? वाह-वाह।"

"तो देख आये आप, फेंकी हुई चीजों का भी इस शाला में कैसा उपयोग हुआ करता है?

बाँस के मोढ़े और कागज की टोकनियां देख लीं हैं न? और गोशाला में नहीं पहुँच पाये? नहीं यदि जाते तो देख पाते वहाँ पर भी स्त्रियाँ ही काम कर रही हैं।"

"वही तो कह रहा था, इसे व्यायामशाला न कहकर अगर औरतों का कारखाना कहा जाय तो ज्यादा अच्छा हो। व्यायाम से और इससे मतलब?"

"क्यों नहीं? यह सब भी तो एक प्रकार का व्यायाम ही है न?"

"व्यायाम? नहीं, यह मजदूरी है आत्म-रक्षा के लिये स्त्रियों को कुछ थोड़ा-सा लाठी-काठी चलाना सीख लेना अच्छा होता है, लेकिन यह तो खासी मजदूरी है।"

"बैठ जाइए आप नितीन बाबू। बात शायद आप समझे

नहीं। आत्म-रक्षा केवल लाठी चलाने से ही नहीं होती। बेकारी का यह युग है, इस युग में पहला प्रश्न उठता है—सम्मान के साथ आत्मरक्षा करने का। सम्मान के साथ जीवित रहने का। यदि पेट की रोटी का सम्मान के साथ उपार्जन न कर सके, तो आत्मरक्षा का प्रश्न ही भूठा पड़ जाता है। आत्मरक्षा का मतलब यह नहीं कि रास्ते-घाट में दो-चार गुण्डों के हाथ से अपने को बचा लिया। नहीं उसका मतलब है—शरीर और मन को गरीब के हाथ से बचाना, बेकारी के हाथ से अपने आपकी रक्षा करना, जिन्दगी के हर जटिल पहलू को जीतना।"

नितीन जोर से हँस पड़ा—"लेकिन वंशी देवी,—हाँ—हँसा क्यों? अगर सच पूछो तो आपकी सब बातों पर, इस शाला क हर कामों पर मुझे हँसी आती है।"

"क्यों?"

"क्यों? सो आपही ख्याल करें, स्त्रियाँ भी कहीं लाठी चला सकी हैं? फूल-सी नरम तो होती हैं आप। कसकर अगर किसी ने हाथ पकड़ लिया तो बस रह गयीं चुपचाप।"

"और मैं कहती हूँ—लाठी चलाने से लेकर प्रत्येक कार्य को स्त्रियाँ सुन्दरता से कर सकती हैं।"

"आप कहती हैं?"—परिहास से नितीन मचल-सा पड़ा—"लेकिन इस बात को जोर के साथ कहनेवाली आप होती ही कौन हैं?"

"मैं ? मैं—मैं ही जो हूँ नितीन बाबू।—एक सरल किन्तु दृढ़ मधुरता से कहने लगी बाँसुरी—"मैं—मैं हूँ, इसलिए कि मैं भी दुनिया का एक अंश हूँ। मानवता के नाते नारी मैं—मेरा भी एक व्यक्तित्व है और उसी व्यक्तित्व के नाते मैं—मैं हूँ। सो वही मैं कह रही हूँ कि स्त्रियां सब कुछ कर सकती हैं। एवं तभी हम स्वाधीन, मर्यादाशील कहला भी सकती हैं, जबकि हम अपने-आपकी रक्षा कर सकें—हर तरह से।"

परन्तु फिर भी—नितीन निविड़ आमोद से उस असीम स्पर्द्धा की ओर देखते हुए बोला—"और बेकारी की समस्या को भी ?"

"जरूर। अपनी-अपनी छोटी सेवा है और है भावना। यदि मेरी इस छोटी सेवा और छोटी भावना से दस-बीस परिवारों का भला और उनकी जीवन-यात्रा सरल हो सके, तो मैं अपनी सेवा और भावना को अपने भीतर बन्द कर रखूं ही क्यों ?"

"अच्छी बात है, लेकिन मर्द घर में बैठ रहें और औरतें पैसा कमावें, यह कैसी भावना है ?"

"मर्द ? किन्तु वह बेचारे करें क्या ? मजदूरों की बात दूसरी है, क्योंकि उन्हें मजदूरी करने में कोई रुकावट नहीं है। वह औरत, मर्द—सभी काममें लग जाते हैं, किन्तु शिक्षित वर्ग जाय कहां ? करे क्या ? खाय क्या ? न उसके लिये नौकरी है, न कुछ। मजदूरी वह नहीं कर सकते। फिर करे क्या ?

भूखों मरें—यही आप कह रहे हैं न? वे भीख नहीं माँग सकते। ऐसी दशा में यदि स्त्रियाँ कुछ थोड़ा-सा उपाय कर लें तो मैं इसे सम्मान ही का काम समझूँगी। सीधी बात यह है—कि मर्द की बात मर्द सोचें, परन्तु हम स्त्रियाँ अपनी बात क्यों न सोचें?"

"पहली बात, आप बेकारी-बेकारी कर रही हैं, सो वह है ही कहाँ? इस खुशी-भरी दुनियाँमें चैन, आराम, खुशीके सिवा मुझे तो और कुछ नहीं दिखता।" नितीन ने तबतक कीमती सिगरेट सुलगा ली थी।

इतनी देर के बाद वास्तविक विस्मय से बाँसुरी हतवाक् हो रही—यह मनुष्य कहता क्या है?

"अच्छा तो—"। असीम घृणासे मुँह फेरे-फेरे बाँसुरी ने कहा।

"मैं जाऊँ? सो ठीक है। जाना तो मुझे है ही।" लेकिन इस लड़की के लिये कुछ पूछना है—क्या इससे भी यही सब नीच काम लिये जायँगे?"

बाँसुरी ने नीच शब्द को सुनकर भी न सुना, कहा—"यहाँ कोई भी काम किसी से जबरन नहीं कराया जाता। अपनी खुशी से स्त्रियाँ काम कर पैसा उपार्जन करती हैं। तो श्यामा के लिये केवल व्यायाम ही रहेगा; और जिस तरह का जो कुछ भी वह पसन्द करे। यदि आप चाहें तो सबेरे घन्टे-दो-घन्टे के लिये उसे भेज दिया करें, गाड़ी आपके पास है ही।"

"अच्छी बात है, मैं उसे रोज पहुँचा जाया करूंगा।" इसके बाद नितीन श्यामा को लेकर उठा फिर कुछ सोचकर उसने पूछा—"फीस क्या है?"

"जो कुछ भी आप देना चाहें।"

"ऐसा! अब श्यामा रानी भी आपकी तरह पहलवान बनेगी। है न श्यामा? फिर क्या है, बाडी-गार्ड की अब जरूरत भी न रहेगी, अकेली चाहे यहां से लेकर लन्दन तक क्यों न चली जाय।"

उसके कहने के ढङ्ग से बाँसुरी हँस पड़ी, और उस मीठी हँसी को नितीन के रूप-लोलुप, तृष्णार्त नेत्रों ने आकण्ठ पी-सा लिया। उसे पीकर उच्छ्ृंखल मन उसका मतवाला बन गया। जाने की बेला उसने फिर बाँसुरी को देखा और देखता ही देखता चल पड़ा।

( ८ )

उस दिन अखिल ब्रह्माण्ड में मानो नदी-नाले फूट पड़े थे। पथ-घाट में अथाह जल, जल और जल, राशि-राशि जल, अपरिमित जल। दिनकी बेला में भी अँधेरा छाया था। वर्षा अविराम झर रही थी। कहीं कोई काग, गलगलिया छप्पर और वृक्षपत्र की आड़ में दबके बैठे थे। गाय-बछड़े मैदान में भींगते जा रहे थे। राज-पथ प्रायः जन-मानव शून्य था। उस जल-विप्लव में उस अन्धे भिखारी का स्वर एक विप्लव ही सा सृष्टि करता हुआ वर्षा की नसों में गूँज रहा था—बाबूजी एक पैसा, मुट्ठी भर आटा। और उसके बीच में करुण आर्तनाद

की तरह उस छोटी बालिकाका क्षीण-स्वर ध्वनित हो रहा था—माई, धर्मात्मा, एक पैसा। बालिका अन्धेका हाथ थामे धीरे-धीरे बढ़ी चली जा रही थी। वर्षा की घनी बूंदें अर्द्ध-नग्न जीवों पर अठखेलियाँ करतीं मानो एक रंग-हंसी से मस्त-सी हो रही थीं।

भरभराती हुई कार उस वृहत गेट के पास रुकी। दरवान दौड़ा आया। आरोही नितीन ने कार्ड निकालकर उसके हाथ में धर दिया। फिर सिगरेट का धूम्र उड़ाता हुआ उस ओर देखने लगा। भिखारी तबतक उसी गेट तक पहुँच चुका था और करुण स्वर से चीत्कार कर रहा था—'एक पैसा राजा बाबू एक पैसा।'

घर की दासी हाथ में टिफिन-केरियर लिये द्वार पर मिनट भर के लिये रुकी।

'माई एक पैसा।' भिखारी खड़ा हो गया।

"चल-चल, दूर हो यहाँ से, काम न धाम, केवल पैसा और पैसा। हट-हट छूना नहीं, इसमें बाबा लोग का खाना है।" हाथ के सोने के कड़ों को चमकाती हुई वह बोली।—फिर चल दी।

नितीन एक घृणा-मिश्रित परिहास के साथ भिखारी द्वय के नग्न-प्राय कुत्सित मूर्ति को देखता रह गया।

"बाबूजी, एक पैसा दो, दो दिन की भूखी हूँ।" बालिका दौड़ी-दौड़ी उस पथिक के निकट पहुंच चुकी थी—जो कि अध-टूटे छाते को सिर पर खोले, मैली धोती और फटा शर्ट पहने

भागा-भागा चला जा रहा था। व्यक्ति खड़ा हो गया और कदाचित् करुणा, सहानुभूति से उन दोनों को देखा, फिर एक अपराधी-सा बोला—"नहीं है माई।"

"कुछ नहीं है? एक धेला?"—बालिका वेदना से रो-सी पड़ी।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं है माई।"

"कुछ नहीं है?"—मानो निबिड़ अविश्वास से बालिका पूछ उठी।

"नहीं है कुछ। मैं बेकार हूँ बेटी। तेरे जैसी फूल की पंखुड़ी मेरे घर पर भी है, कल से वह भी तेरी तरह भूखी है।"

नितीन ने विस्मय से देखा, इसके बाद बालिका ने अपने शतग्रन्थि-युक्त साड़ी के छोर से एक पैसा निकालकर पथिककी ओर बढ़ा दिया—"वह भूखी है? इस पैसे से उसे लइया ले देना बाबूजी, वह भूखी है।"

और इसके बाद नितीन ने अखण्ड विस्मय से देखा—आँधी के समान वेग से पथिक भाग निकला और भिखारिणी आश्चर्य से उसे निहारती रह गयी—पैसा वैसे ही उसके हाथ में रह गया।

बालिका लौटी तो सीधी नितीन के निकट आकर खड़ी हो गयी—"बाबू एक पैसा। दो दिन की भूखी हूँ।"

"झूठ।" नितीन घृणा से कहने लगा—"बिलकुल झूठ। अभी तू उसे पैसा दे रही थी न? अगर भूखी होती तो पैसा कैसे देती? यह सब माँगने का ढंग है।"

बालिका फिर भी जब न हटी तो ड्राइवर ने उसे भगा दिया ।

और नितीन एक विस्मय लिए विचारने लगा—कैसी यह भिक्षा की प्रवृत्ति है ? पास पैसे रहते हुए भी भीख माँगना । नहीं तो क्या ? दो-दस पैसे अगर उसके पास न होते तो अनायास यह उसे पैसे देती ही कैसे ? और वह व्यक्ति ! एक पहेली-ही-सा तो था, रोता-सा वह कह रहा था न—बेकार हूँ । ठग था वह । लेकिन हाँ—यह बेकारी क्या बला है ? और वह वंशी भी यही कह रही थी—तो फिर ?

"आइये साब !" नौकर गेट पर खड़ा पुकार रहा था । नितीन की चिन्ता वहीं पर समाधिस्थ जरूर हुई, किन्तु फिर भी जाने क्यों—जिस स्फूर्ति को लेकर वह घर से चला था, सो उसकी जाती रही ।

'बेकार—बेकार !' उसके हृदय पर मानों यह शब्द मडराने सा लगा ।

ड्राइंग रूम में प्रवेशकर पाया नितीन ने एक वृद्ध व्यक्ति को सूटेड-बूटेड ।

सीतानाथ ने अत्यन्त प्रसन्नता से नितीन का स्वागत किया—"आइये-आइये ! उसी दिन से हम आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—जिस दिन कि आपने माधुरी को गुण्डों के हाथ से बचाया । आपने उस दिन एक ऐसा काम किया कि जिंदगी भर के लिए हमें आभारी बना दिया ।"

"कोई बात नहीं। छोटा काम था। वैसी स्थिति में हरएक आदमी वही करता जो कि मैंने किया।"

सीतानाथ ने नौकर से माधुरी को बुलाने के लिए कहकर पूछा—

"आपका शुभ नाम?"

"नितीन बसु।"

"मिस्टर बसु क्या आपही हैं?"

"जी-हाँ।" कहकर नितीन ने देखा उस दिन की वही माधुरी निविड़ विस्मय लिए उसे निहार रही है।"

"बैठो न मिस राय।"—नितीन ने कहा।

रायसाहब उठकर खड़े हो गये—"अच्छा तुम दोनों बैठो, चाय-वाय पिओ, तब तक मैं एक जरूरी काम से निबट लूं।"

पिता के गमन के बाद माधुरी ने रुक-रुककर पूछा—"यदि आप वही मिस्टर बोस हैं, तो उस रात में पैदल क्यों चल रहे थे? मैंने सुना था—आप गाड़ी के बिना चलते ही नहीं।"

"ऐसी बात नहीं है माधुरी। और अगर पैदल चला भी तो क्या?"

माधुरी की माता नौकर के हाथ से फल-मिष्टान्नकी प्लेटें लिये पहुँच गयीं और बड़े आदर-यत्न से नितीन को जलपान कराने लगीं।

उसकी माता कहने लगीं—"उस दिन की बातें माधुरी के मुँह से सुनने के बाद आपसे मिलने के लिए हम लोग ... थे

रहे थे। अभी अभी राय बहादुर ने आपके आने की सूचना दी, सो मैं दौड़ी चली आयी। पान, सिगरेट मंगवालो माधुरी।"

नितीन ने हाथ उठाकर माधुरी को रोका—"कोई जरूरत नहीं है। पान मैं खाता नहीं। रही सिगरेट। सो मैं बाजारू सिगरेट पीता नहीं। आर्डर देकर स्पेशल बनवा लेता हूँ। तुम बैठो माधुरी। और इतनी ढेर-सी मिठाई मैं नहीं खा सकूंगा। एक प्लेट तुम भी ले लो माधुरी!"

माधुरी की भौंहें विरक्तिसे सिकुड़ रहीं। यद्यपि इसी व्यक्ति ने उस दिन उसके सम्मान की रक्षा की थी, यद्यपि यह व्यक्ति शहर का श्रेष्ठ और विख्यात धनवान है, युवा है और कदाचित् कार्तिक जैसा रूपवान भी है, परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी न जाने क्यों माधुरी इस व्यक्ति को सहन कर नहीं सक रही थी। विरक्ति लिए हुए पल भर में उसने विचार किया—चाहे यह कितना भी धनवान क्यों न हो, किंतु जैसा तो अपढ़ अशिक्षित है, वैसा ही घमण्डी भी। यदि सभ्य, कल्चर्ड और विनयी होता—तो एक स्त्री को तुम कहकर क्यों सम्बोधित करता ?

"मैं किस तरह कृतज्ञता प्रकाश करूँ, किस तरह धन्यवाद दूँ, किस तरह—"

"धन्यवाद किसे दे रही हो मां?"—माता को रोक[illegible] [illegible]सूचक स्वर से कह उठी माधुरी।

"क[illegible] कहती है माधुरी?" माता विस्मित हो[illegible]

"मैं ? यही कि—यदि कोई धन्यवाद को परिहास की दृष्टि से देखे, यदि कोई उसे गन्दा समझे, तो ऐसों के सामने कहकर उस धन्यवाद को अपमानित करोही क्यों ?" माधुरी का विमुख चित्त एकदम विमुख हो बैठा—अपने अतिथि के प्रति।

"माधुरी ने सचही मेरी रुचि पहचान ली है, इस धन्यवाद से मैं घृणा करता हूँ।"

माता ने विमूढ़ दृष्टि से उसे देखा, फिर प्रसङ्ग परिवर्तनकर बोली—"तुम आज सिनेमा जाओगी न माधुरी ? फिर नितीन बाबू के साथ क्यों न जाओ ?"

"इंग्लिश फिल्म है। यह क्या समझेंगे उसे ? अवहेलना से कहा माधुरी ने।

"तो क्या हुआ। तुम इन्हें समझा देना।"

नितीन—हा—हा करके हंस पड़ा।

उस असभ्य रीति की हंसी को सुनकर माता-कन्या के नेत्र विराग से क्षुब्ध हुये।

अनमना सा नितीन ने कोट के पाकट में हाथ डाला और वैसे ही कुछ कागज निकालकर हाथ वापस लौटा।

माता कन्या उन बन्द तारों को देखकर आश्चर्य चकित हुईं—"अरे, यह तो कई तार हैं, विस्मय, आपने इन्हें खोला नहीं ?"

उसनीन ने बन्द लिफाफों को देखा, कहा—"देखो तो मैं मुँह से सुनता हूँ, न जाने कब कब यह टेलिग्राम आते

पाकट में पहुँचकर विन खुले ही रह गए।"

नितीन एक के बाद एक तार को खोलकर
अवहेलना से उन्हें जमीन पर फेंक देने लगा।

"क्यों मिस्टर बोस, कुशल तो है न?" माता ने उ०
दिखलाकर पूछा।

"एम० ए० का रेजल्ट है। फर्स्टक्लास-फर्स्ट आया हूँ, सो
मित्र ने बधाई दी है। अच्छा, नमस्कार।"

नितीन उठा और चल पड़ा।

और माधुरी स्तब्ध बैठी रह गयी—मानों अभी-अभी
दुनियां के सातवें के ऊपर भी एक और आश्चर्य का परदा
उसकी आँखों के सामने से हट गया हो।

इस एम० ए० की वार्ता सुनने के बाद उसका विमुख चित्त
उस व्यक्ति के ऊपर और भी विमुख हो उठा—तो शिक्षित,
एम० ए० का यह इच्छाकृत अपराध है, अवहेलना है, धन का
गर्व है।

( ६ )

शीत के हरे पालने पर विश्व का यौवन निखर पड़ा था।
और सूर्य की किरण में सुधा की मिठास भर चुकी थी, पवन
और कटिका ने मित्रता कर ली थी। गार्डेन की हरी-हरी दूब
पर बालकों का झुण्ड किलकारियाँ करता फिर रहा था। लौह
बेंच पर बैठे नर-नारी गण गल्प-गान में मस्त थे। उस ओर
छोटे तालाब की पत्थर की सीढ़ियों पर कहीं कोई बैठा

पहुंचा, तब सन्ध्या हो चुकी थी। टहलता
...म के जत्थे की ओर निकल गया। उसे लगा
, सन्ध्या-बेला में मूर्तिमान वैराग्य की तरह जत्थे के
...ई बैठा है।

नितीन का खुशी-भरा जी उस दृश्य के सामने क्षुब्ध विस्मय से विमूढ़-सा हो रहा—इस खुशी-भरी बेला में यह वैराग्य कैसा? प्रश्न उठा और उस प्रश्न को मन में लेकर पहुंच गया वह मूर्ति के समीप। उसके बाद चिल्लाकर कह उठा—"तुम-तुम वासु? लेकिन ऐसी सुहावनी सन्ध्या में तुम यहाँ पर बैठकर क्या कर रहे हो?"

जब वासु के निकट से उत्तर न आया, तब फिर उसने कहा—"कहो-किस परी के ध्यान में धूनी रमी हुई है आपकी?"

एक सरल परिहास मात्र था, किन्तु नितीन देखकर विस्मित हुआ, कि उस सरल परिहास से वासु न जाने क्यों सिहर उठा और फिर अकारण ही उसके नेत्र छलछला आये।

"बात क्या है?" पूछा नितीन ने।

"हम दरिद्र, बेकारों के लिये और प्रेम? चुप रहो नितीन। दुनिया यदि सुन पायगी तो क्या कहेगी?"

"कहेगी क्या?"—और इच्छा होते हुये भी नितीन न जाने क्यों जोर से हंस न सका। कहा केवल—"कहेगी ही क्या? ...भी किसी को खरीदी हुई चीज होती है?"

...है—दस बार है, सौ बार है, है—है!"

नितीन को लगा—उत्तेजनासे अभी-अभी वासुदेव, भूख से रुक जावेगा, स्तब्ध नितीन वासुदेवका मुंह निहारता है, बस

"यदि खरीदा हुआ न होता प्रेम, तो मेरे प्रेम को उन्हा इस तरह से ठुकराहा क्यों देती ?"

"तुम्हारे प्रेम को ? लेकिन कैसा प्रेम ? किससे और कब हुआ वह प्रेम ? उसे ठुकराया ही किसने ?"

उसी उत्तेजना में भरा-भरा वासु कह चला—

"दुनियां ? सो वह केवल चालबाजी, प्रवञ्चना से भरी हुई है न। और प्रेम है उसका पुष्ठ-पोषक। वह अमीरों के लिये है, उन्होंने तो उसे खरीद रखा है न। मेरे बचपन की साथिन माधुरी। हम दोनों साथ-साथ पढ़े, खेले, बड़े हुए साथ ही साथ। एक दिन वह बचपन का सपना सफल होने को आया, परन्तु उस दिन पाया मैंने क्या ? केवल अपमान।

उसके बाप ने कह दिया—दरिद्र के लिये प्रेम केवल सपना मात्र है। और माधुरी ने भी मेरे घर-मकान, रहन-सहन को देख कर कह दिया मुझ-से निर्धन के लिये उसका जन्म नहीं हुआ है।

"उसने कहा ? माधुरी ने ?"

"तुम उसे पहचानते हो ?" वासुदेव तबतक सहम चुका था।

"कुछ-कुछ।"

नितीन का हृदय सहसा वासुदेव के प्रति स्नेह, सहानुभूति से भर उठा—"ऐसी है वह ?" मानों एक रूढ़ विस्मय से नितीन अपने आप कह उठा।

.तीन, वह ऐसी नहीं है, किन्तु करे क्या ? मैं स्वयं । वह शायद मेरे लिये सब कुछ सह भी लेती, किन्तु सन्तान के लिये ऐसा भीषण अभिशाप, फिर माँ की ति होकर वह सहती भी कैसे ? मुझ बेकार की सन्तान बेकार के सिवा और हो ही क्या सकती है ?"

नितीन चुप हो गया, और उस चुप्पीमें स्वतः प्रश्न उठने लग गये—यदि मेरे लिये पर्याप्त धन-सम्पद है, तो वासु के लिये क्यों नहीं है ? यदि मेरे लिये प्रेम एक सहज और खेलने की वस्तु है, तो वासु के लिये क्यों नहीं है ? और वही प्रेम इसके लिए घातक क्यों है ? नहीं नहीं, बिलकुल झूठ, विचार उठा वह—यदि इन दोनों के मन में एक दूसरे के लिये स्नेह है, तो बेकार की बात कैसी ? यदि एक को दूसरेके लिए चाह है, तो मिल न सकना कैसा ?

"तुम भी यार, बिना सिर-पैर की बात कहते हो ! अगर एक दूसरे को चाहते हो, तो बाधा कैसी ? और फिर उस चाह की चीज को छोड़कर तुम जी भी कैसे सकोगे ?"

वासुदेव ने स्थिर नेत्र से उसे देखा फिर धीरे से बोला—

"वही जो आज सत्य हो रहा है, चाहे इसे दुनियां की देन कहो, चाहे मनुष्य की देन कहो, चाहे भगवान की देन कहो; किन्तु बात यह सच है, कि एक अनिच्छा के साथ, असम्मान, क्षोभ के साथ, असन्तोष के साथ, फिर भी हमें जीना ही पड़ेगा। स्फूर्ति नहीं है मन में और न शरीर में। अभाव से जूझते-जूझते मेरा मन भीरु, का पुरुष-सा हो गया है, घर में परिवार के

लोग भूखों मर रहे हैं, पावनेदार नोचे डाल रहे हैं, भूख से पेट जला जा रहा है और मन में प्रेम सिर पीटा करता है, बस यही है आजका जीवन, और उसी जीवन में हमें जीवित रहना पड़ेगा, और यही तो है आज का सत्य।

तुमसे मैं कैसे कहूँ, यदि इस बेकारी के नीचे आज मैं दबकर मरने को न बैठता, यदि मेरे प्रेम को गृहस्थी के भीतर परिवर्द्धित होने का अवसर मिलता, यदि मेरे बाहों की ताकत को दुनियां आज एक आवश्यक वस्तु की भांति मानती, यदि वह इस ताकत को जीते रहने का अवसर, सुयोग देती, तो शायद आज का यह तुम्हारा वासु भी—गांधी, सुभाष की छाया में खड़े होने लायक हो जाता।

तुमसे मैं कैसे कहूं, कि आज इस जीवन-मृत्युके भीतर मेरा श्वास पल-पल में रुककर किस प्रकार से कुष्ठव्याधि-ग्रस्त हो रहा है। केवल मेरी अपनी बात नहीं है नितीन! बात है यह दुनियां के ज्यादा हिस्सा आदमियों की।"

"वही बेकार वाली बात। लेकिन पूछता हूं, आखिर तुम लोग भी तो आदमी हो, फिर इस बेकारी को हटा क्यों नहीं सकते?"

उन्मादों-सा वासुदेव हा हा करके हँस उठा—"दुनियां की दौलतपर वह जो बेकारी का भीषण कंकाल अड़ा हुआ बैठा है, क्या देख नहीं पाते हो उसको? विद्रोहकी आग उसकी आँखोंमें भरी पड़ी है, राक्षसकी क्षुधा उसकी नसोंमें व्याप रही है, व्यक्तिकी

हँसी उसके हाड़ोंमें समा रही है। तो ऐसे एकको हम जीतें भी कैसे ?"

"क्यों ?"

"क्यों ? किन्तु उसका कुत्सित रूपही जो दिवानिशि हमें उन्माद बना रहा है। घर-बाहर वही रूप, वही आर्त चीत्कार हमें निगले जा रहा है। उससे जीतना कैसा ?"

नितीन जमीन पर बैठ गया, अविश्वाससे कहा—"फालतू बक-बक तो तुम बहुत कर गये। मेरी समझ में यह सब तुम्हारा कोरा उच्छ्वास है। बड़े घर के लड़के हो, मुसीबतमें पड़ गये हो न जाने क्या-क्या बातें दिमाग में चक्कर काटा करती हैं।"

"जाने दो।"—उदास-व्यथासे वह कहने लगा—"और न मैं इसे किसीको समझाना ही चाहता हूं। आज जब तुम सामने आये, तब—जाने दो—उस बातको—"

"जाने कैसे दो यार, चिढ़ रहे हो ? लेकिन मेरा कहना सिर्फ इतना है, कि तुम और वंशी जिस बेकारीका सपना देखा करते हो, उसे मैं क्यों नहीं देख पाता ?"

"तुम ? किन्तु तुम्हारी दृष्टि वैसी है ही कहाँ ?"

"वाह-यार-वाह। क्या मैं इस दुनियां का आदमी नहीं हूँ ?"

"हो। किन्तु अन्तर बहुत ज्यादा है। तुम इस बेकार दुनियांसे बाहर हो। वरना तुम्हारी आंखोंके सामने विश्व जो आज तिल-तिलकर मरण-पथको ओर जा रहा है, सो अनायास

देख क्यों नहीं पाते ?"

"और, अगर कहा जावे कि तुम गलती पर हो तो ?"

"प्रमाण सामने है। राधा को जानते हो न ?"

"हाँ।"

"तो चलो।"

"क्यों ?"

"तुम्हें कुछ दिखलाना है। दूर नहीं जाना पड़ेगा, उस कुलिया में उसका घर है।"

"चलो।"

दोनों चल पड़े।

"माधुरी ने शादी से इन्कार ही कर दिया ?"

"जाने दो उस बात को। कबसे तुम उसे जानते हो ?"

"थोड़े दिनों से।"

"बहुत थोड़े दिन से ?"

"हाँ। लेकिन बाबु, अब तक तुमने मुझसे छिपाया ही क्यों ? मैं इतने धन का अधिकारी हूं। सो तुम जानते ही हो। और अगर दो-चार लाख उसमेंसे निकल जावे, तो मुझे हानि न पहुँचेगी, सो भी जानते हो। तुम मुझसे लाख रुपये लेकर माधुरी से शादी कर सकते हो, और बेकारी के प्रश्नको भी हल कर सकते हो।"

"बिल्कुल नहीं। वरन् उससे होगा उल्टा ही।"

"उलटा ?"

"उलटा ही। क्या उससे इस बेकार पर एक और बोझ लादना न होगा?"

"जाने भी दो। बात यह है, कि तुम लोगे नहीं।"

वासुदेव चुप रहा।

"लेकिन श्यामापर मेरा कुछ अधिकार है न?"

"जरूर। वह तुम्हारी भी बहन है।"

"बस-बस, वह मेरी भी बहन है।" प्रसन्नताकी हँसी नितीन के मुहपर खिल उठी।

इसके बाद दुर्गन्ध-पूर्ण गलीके क्षुद्रगृहके सामने वासुदेव खड़ा हो गया। पुकारनेकी जरूरत न पड़ी। द्वार पर हाथ रखते ही वह खुल गया। और उस खुले द्वार पर नितीन ने जो कुछ देखा, उसके बाद संगीत का पद गुनगुनाना उसके लिये असम्भव सा हो गया। मिट्टी के टूटे-फूटे दालान में एक मरणोन्मुख नर-कंकाल और दोनों हाथ से आंखें ढाके राधारमण अनित दूर पर बैठा था।

"भाभी कैसी हैं राधा?" वासुने पूछा।

राधारमणने एक बार भावहीन नेत्र उठाये फिर वैसाही बैठा रह गया।

"क्या वह बीमार हैं?" मृदु स्वरसे नितीनने वासुदेवसे पूछा।

"हाँ। छः महीने से बीमार हैं।"

"क्या बीमारी है?"

"ईश्वर ही जाने।"

"इलाज किसका हो रहा है?"

"किसी का भी नहीं।"

"ऐसी हालत में भी इलाज नहीं?"

"जिसके घरमें मुट्ठीभर अनाज नहीं है, उसके लिये इलाज! कोरा कौतुक नहीं तो क्या है?"

नितीन चुप रहा।

राधा ने फिर कहा—"देख रहे हो न, सामने बैठा असहाय पति किस तरह से पत्नी की मृत्यु-यातना देख रहा है? वह जानता है और भलीभाँति जानता है—कि सुचिकित्सा से उसकी पत्नी शायद जी भी सकती है। अन्ततः रोज यातना से बच तो सकती ही है; किन्तु फिर भी उसे निश्चेष्ट बैठना पड़ गया है। क्यों? क्योंकि उपाय नहीं है। और, सबसे बड़ी बात तो यह है, कि वह यहाँ से हट भी नहीं सकता, बैठ भी नहीं सकता।"

साहसा नितीन चिल्ला पड़ा—"तुम आज मुझे किस दुनियाँ में लिवा लाये?"

"बेकारों की दुनियाँ में नितीन।"

"बस-बस करो। यहां पर मेरा स्वच्छन्द श्वास भारी हो रहा है, कहाँ लाये वासु तुम मुझे?"

"बस इतना ही? यह तो एक साधारण, छोटीसी बात है—जो कि घर-घर हो रही है।"

"चलो यहाँ से।"

"चलो।"

चलते-चलते सहसा नितीन रुका—"दौड़कर जाओ वासु, डाक्टर पटेल को लिवा लाओ।" नितीन तब सहम चुका था।

"नहीं।"

"क्या नहीं?"

"डाक्टर लाकर क्या करोगे? और कितनों के लिये तुम डाक्टर लाओगे? घर-घर यही है।"

"घर-घर?"

"हाँ—घर-घर चलो मैं तुम्हें दिखला लाऊं।"

"बस, इतना बहुत है। तुम डाक्टर को न बुलाओगे? अच्छा मैं ही जाता हूँ।" वाद-प्रतिवाद की प्रतीक्षा किये बिना ही नितीन चल पड़ा।

[ १० ]

उस दिन सूर्य की रश्मि में मरुभूमि की-सी तृष्णा भरी हुई थी—प्यास-प्यास—आर्तप्यास, समुद्र-सी विशाल प्यास!

और कदाचित्त उस प्यास को हृदय में दबाये हुए नितीन की कार व्यायामशाला के द्वार पर पहुँच गयी। गाड़ी रुकी, न रुकी नितीन उतर पड़ा। अधजला सिगरेट हाथ में लिए सीटी बजाता हुआ वह बैठक में पहुंचा। सामने रखी घन्टी बजाई और जब परिचारिका ने श्यामा को लाकर उसके सामने उपस्थित कर दिया, तब वह कह उठा—वंशी देवी से मिलना चाहता हूँ।"

"दोपहरीमें उनसे मुलाकात नहीं हो सकती।" परिचारिकाने कहा।

"और मैं कहता हूँ कि हो सकेगी। क्योंकि यह होना ही है। क्यों? क्योंकि सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी मुझे जरूरत है।" एक अधिकारीकी भाँति कहा नितीनने। परिचारिका के विस्मय-व्याकुल नेत्र उसके मुख पर निबद्ध हो रहे।

"क्या भूखी-सी देख रही हो? जाओ, कहो—मैं अभी मिलना चाहता हूँ। समझीं न? अभी-अभी।"

इसबार परिचारिकाने इस तरह से देखा—जैसे कि उपस्थित इस विराट् विस्मयसे उसका परिचय प्रथमबार हो रहा है।

"फिर भी मुँह बाये खड़ी ही रहेगी? चल श्यामा। यह हिलने की नहीं। तूही चलकर रास्ता बतला बिटिया, कहाँ है तेरी वंशी?"

चलती हुई श्यामा ने जीभ काटकर कहा—"वंशी नहीं बाँसुरी देवी कहो भैया!"

"हाँ-हाँ, देवी-देवी। मैं भुलक्कड़ जो हूँ श्यामा।"

श्यामा के पीछे चलते-चलते वह कहने लगा—"देवी-देवी, बापरे बाप! देवी कह देने से कहीं कोई आदमी—आदमी से देवी-देवता बन भी सका है? सब ढोंग है, चालबाजी है। दुनियाँ में न कोई देवी-देवता बन सका है, न बननेकी आशा है आदमी आदमी ही बनकर रहेगा।"

"और यही उसका गौरव भी है नितीन बाबू।" वीणा-

विनिन्द्रित स्वर से कह उठी बाँसुरी !

चौंककर नितीन ने देखा—जलती हुई भट्टियोंपर बड़ी-बड़ी कढ़ाई, हाँड़ियाँ चढ़ी हैं और स्त्री-पुरुष मिलकर जाम-जेली, टाफी आदि बनाने में लगे हैं। श्यामासे बातों में लगा-लगा नितीन कब वहाँ तक पहुंच गया सो वह स्वयं ही नहीं जान पाया।

उस जलती दुपहरी में ज्वलन्त अग्नि के सामने नितीन सिहर उठा। उसे लगा—अग्निकुण्ड के सामने किसी दैत्यने लाकर उसे खड़ा कर दिया है। शायद वह सहमा, न सहमा बोला—"आदमी बनकर रहना ही उसका गौरव है ?"

"है ही। देवत्वसे मनुष्यत्व लाख गुना श्रेष्ठ है।"

"बच्चों जैसी बातें हैं।"

"फिर अभी आप क्यों कह रहे थे कि आदमी देवता नहीं बन सकता ?"

"वह दूसरी बात है। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि देवता आदमी से बहुत ऊंचा होता है। फिर नाम के पीछे एक देव-देवी लगाने से मनुष्य देवत्वको नहीं पा सकता। क्योंकि वे लोग आदमी से कहीं ऊँचे होते हैं।"

"परन्तु पहले, इतना तो समझिये कि यह क्यों लगाया जाता है ?"

"तुम ही कहो न—क्यों लगाया जाता है ?" वैसे ही परिहास से पूछा नितीन ने।

"पहली बात है—यह शब्द सम्मान का है। दूसरी बात—

शायद कभी—किसी एक दिन सम्मान, श्रद्धा से दुनियाँ ने किसी एक नारी को देवीत्व दे दिया हो और तब से हिंदुस्थान इस शब्द का सदुपयोग करता चला आ रहा हो।"

"ऐसा!"

किन्तु उस परिहास से बाँसुरी विचलित नहीं हुई—"हां। शायद ऐसा ही। आप जानते होंगे कि पुराण, इतिहास आदि में नारी को देवी कहकर ही सम्बोधित किया गया है।"

"अरे तो भाई, चिढ़ती क्यों हो? अच्छी बात है। मैं भी वंशी देवी कहने से नहीं चूकूंगा। और वह आदमीवाली बात?"

"आदमी को देवता से अधिक सम्मान से मैं देखती हूँ। आदमी का आदमी होकर रहना ही अधिक गौरवमय समझती हूँ।"

"इसलिए तुम ऐसा समझती हो कि वह कभी देवता बन ही नहीं सकता।"

"शायद वह कभी ऐसा होना भी न चाहेगा। क्योंकि पृथ्वी की वास्तविकता में बसा हुआ आदमी वास्तविकता से ही पहचान करना चाहेगा, किसी कल्पित स्वर्ग से नहीं। और उसी दुनियाँ में रहकर वास्तविक सत्य को पहचान लेना, उस सत्य को दोनों हाथों से उठा लेना ही है उसका गौरव।"

उन्माद आँधी सा नितान्त हँस पड़ा—"तो आपके मत से स्वर्ग और वहाँ के अधिवासी कल्पित हैं? मैं मद्यप हूँ और

साधु भाषा में शायद लम्पट भी कहा जाऊँ, यद्यपि मैं स्वयं ऐसा नहीं सोचता, लेकिन फिर वही मैं स्वर्ग और देवताओं को झूठ कहकर उड़ा भी नहीं दे सकता। और आप कहती हैं सब झूठ है?"

"झूठ है—ऐसा नहीं कह सकती, किन्तु नितीन बाबू, जो कि आँखों के बाहर है, कल्पना के अतीत है, उसे भी तो मैं अन्धभाव से सत्य कहकर मान लेने के लिये तैयार नहीं हूँ। और जबकि सत्य मेरी आँखों के सामने ही प्रकाशमान है।"

"सत्य? यानी आदमी और यह दुनियाँ?"

"शायद ऐसा ही। क्योंकि कल्पना ही कल्पना की भरमार यहाँ पर नहीं है और न थियोरी ही है, यहाँ है सत्य का नग्न रूप। जीने के साथ और जीवन के साथ पृथ्वी की होड़। झूठ के साथ सच की होड़, बेकार दुनियाँ तथा स्वर्ग के साथ क्रीड़ावान मनुष्यत्व की बाजी।"

"नई-नई बात, नये आइडियाज। अच्छा तो वंशी देवी जरा ठण्डे में चलो। इस आग के कुण्ड के भीतर तो मैं जला जा रहा हूँ।"

वह मीठी हँसी—"इसे छोड़कर मुझे कहाँ जाने को कहते हो नितीन बाबू? यही तो है सच्चा जीवन। हम आदमियों की यहीं, इसी अग्निकुण्ड में हमारी जगह है।"

मक्खन की थाली लिए कई व्यक्ति पहुँचे—"नयी भैंसों का मक्खन है रानी जीजी।" बाँसुरी के कुछ कहने से पहले नितीन

ने पूछा—"यहाँ पर क्या घी-मक्खन का भी रोजगार होता है ?"

"हाँ। आपने हमारी डेरी नहीं देखी नितीन बाबू ? दूसरे किसी दिन देख लेना।" तृप्ति के साथ बाँसुरी ने कहा।

"और कौन-कौन से कारखाने हैं ?"

"कारखाने अभी कहाँ हैं ? योंही छोटे स्केल में अभी अपनी देशी वस्तुओं का उपयोग कर देख रहे हैं, कि कौन-कौन सी चीज चल सकती है। अभी श्रीगणेश ही है। चमड़े कुछ रख लिए, कई डिजाइन के जूते बन रहे हैं। देखिये अब जो कुछ जैसा उतर जावे। चेष्टा तो कर रहे हैं।"

नितीन चुप रहा।

परम उत्साह से वह व्यक्ति कहने लगा—"चलिये बाबूजी, अभी मैं आपको यहां के सब कारखाने दिखला लाऊँ।"

"आज ? लेकिन आज तो मुझे पिकनिक के लिए महाराज-बाग जाना है।" वचन शेषकर नितीन ने मुंह उठाया, लगा—
पल भर में उस व्यक्ति का मुख रक्तहीन हो गया है। आ
स्वर से बोला नितीन—"महाराज बाग अभी-अभी तो बन
जाने कितने लाख रुपये महराज बहादुर ने उस बार
दिये। देखोगे तुम लोग ? चलो-चलो मैं लारी में
सबों को ले चलता हूँ। काम करते-करते थ
बुला लो सबों को। कितनी लारी बुलवाऊँ

उपस्थित श्रमिक के मुख में लो

कि
द्रा
पुष्पराशि
गत रात्रि की
ही हो। फूलों के
कांच के ग्लास और

समावेश—एक अपूर्व दृश्य था।

"नहीं महाशय।"—दूसरे पल में उस व्यक्ति का दृढ़ स्वर ध्वनित हो उठा।

"क्या नहीं?"

"बेकारों की दुनियां में बाग-बगीचा कुछ भी नहीं है।"

"अब तुम कहाँ हो बेकार यार? काम जो कर रहे हो रुपये कमा रहे हो।"

"हां। किन्तु फिर भी अभी देरी है। हम नहीं जायँगे।"

"इन सबों को जाने की इजाजत क्यों नहीं दे देतीं बंशी—हां हां देवी?"

"जाओ न भाई।" वह हँस रही थी।

"यों ऊपरी मन से नहीं। अच्छी तरह से कहो न।"

"किन्तु किस अधिकार से और क्योंकर कह सकती हूँ नितीन बाबू। इस सच्ची दुनियाँ को छोड़कर बाग की उस नकली दुनियाँ में जाने को मैं क्यों और कैसे कह सकती हूँ? कारों की दुनियाँ में यदि आमोद एक स्वप्न है तो मेरे विचार द स्वप्न ही क्यों न बना रहे?"

" जाने यह कैसी सूझ है? अगर इन्हें कोई आमोद, रहता है, तो तुम बाधा देती हो।" त्यक्त स्वर से

।

पम्मान को त्याग कर जो आमोद है, उसे रे या आत्म-निपीड़न?"

"इसमें सम्मान और असम्मान का प्रश्न कैसे उठ सकता है ?"

"क्यों नहीं ? आपकी दया से ये आज वहाँ जाने के अधिकारी हो सकते है, किन्तु अपने आप नहीं। यदि जीवन में स्वयं कभी जाने के अधिकारी बन सके, तो उस दिन अपने को ये सम्मानित समझ सकते हैं।"

"अच्छा भाई, जैसी तुम्हारी मर्जी। मैं श्यामा के लिए आया था। पाँच दिन के लिए उसे मैं घर नहीं ले जाऊँगा।"

"मजे में श्यामा यहां रहेगी आप निश्चिन्त रहें।"

विरक्त चित्त से नितीन चल पड़ा। एक छोटा-सा नमस्कार भी उसने नहीं किया। इस बाँसुरी लड़की पर जसा तो वह विरक्त हो रहा था, वैसा ही क्रोधित। बार-बार वह मन में यही कहता जा रहा था, कि इतना घमण्ड अच्छा नहीं।

[ ११ ]

आठ नहीं नौ की घण्टी भी बज गयी। और मुक्त बातायन पथ से मुट्ठी भर धूप नित्य की भांति सुप्त युवक के साथ क्रीड़ा भी करने लगी; किन्तु फिर भी नितीन की निद्रा न टूटी।

कमरे में मूल्यवान गृह-सज्जा। इतस्ततः विक्षिप्त पुष्पराशि न जाने किस वेदना-भार से म्लान थी। शायद गत रात्रि की खुशी की स्मृति उन पंखुड़ियों में सिर पीट रही हो। फूलों के गजरे छिन्न-भिन्न पड़े थे। गोल टेबल पर कांच के ग्लास और

ह्विस्की की बोतल। दो-चार सोडा की बोतलें भी टूटी पड़ी थीं पलंग के निकट पायजेब के घुंघरू बिखरे पड़े थे। और दिन के प्रकाश में गत रात्रि की उच्छृङ्खल खुशी मानों कमरे में छिपी-छिपी फिर रही थी लज्जित कलंकित मुख से।

साढ़े नौ की बेला में सिरहाने की घड़ी में मधुर अलार्म बज उठा। उस ध्वनि से नितीन ने आंखें खोलीं। अलसाये नेत्रों से धूप की ओर देखता बाहर आया। बाहर के कमरे में भेंट हो गयी नितीन से राधा की।

"इतने तड़के आया राधा? कहो, तुम्हारी स्त्री अब कैसी है?" उत्सुकता से नितीन ने पूछा।

राधा ने आश्चर्य से उसे देखा—"सबेरा कहाँ है नितीन दादा, दस बज रहे हैं, अभी उठे हो क्या?"

वह नितीन को दादा कहने लग गया था।

प्रभु को आते देखकर घर के दास-दासी व्यस्त हुए। अकेला घर का अकेला अधिकारी नितीन, दास-दासियों के कलरव से गृह गुञ्जरित हुआ करता था। वरना अपना कहने के लिए दुनिया में उसका कोई नहीं था। राज तुल्य सेवा और आराम से रात दिन उसके अत्यन्त आनन्द, आराम से कटा करते थे।

रात्रि को उच्छृङ्खल खुशी और दिन की बेला में हँसी-कौतुक नित-नवीन रूप की प्यास और उसकी चरितार्थता, बस—कदाचित् यही रही है नितीन की दिन-चर्या। दासी-चाकर पैर पर पैर धरे गप्पें उड़ाया करते।

प्रभु को जागते देखकर कोई ट्रे पर सिगार लेकर दौड़ा, कोई बाथरूम में गरम पानी, वस्त्र रखने लगा, कोई चायकी तैयारी करने लगा।

"दस ? बजे भी होंगे। लेकिन मैं इसे सवेरा ही समझता हूँ। मां अब कैसी हैं ?"

"वैसी ही हैं। एक काम से तुम्हारे पास आया था।"

"एक नहीं दस कहो।"

"सीतानाथ से तुम्हारा परिचय है न ?"

"है। आगे ?"

"उनकी लड़की के लिए इसराज मास्टर की जरूरत है।"

"होगी। तब ?"

"तुम मुझे वहां पर लगा दो दादा जनम भर अहसान मानूंगा।

"ठहरो-ठहरो, पहले मुझे समझ लेने दो। तुम बनोगे इसराज मास्टर ?"

"हाँ"। धीरे से राधा ने उत्तर दिया।

पलभर उसे देखा फिर नितीन ने कहा—"तुम एम, ए. हो न ?

"हूँ। तो इससे क्या ?" निराश व्यथा उसके स्वर में साकार थी।

"अच्छी बात है। चलो ! ठहरो—जरा मैं नहा लूँ। तब तक तुम चाय पी लो। नहीं ? लेकिन क्यों ? दादा कहकर अगर

पुकारते हो तो यह संकोच कैसा ? उस दिन डाक्टर और पथ्य के लिये कुछ लेने से तुमने इन्कार कर दिया। मगर चाय तो पी ही लो।"

स्नान और चाय पानकर मित्रद्वय जब सीतानाथ के घर पहुँचे, तब प्रायः ग्यारह बज रहे थे। राय साहब तब स्नान-भोजन व्यस्त थे।

भृत्य ने कहा—चार बजे से पहले उनसे मुलाकात न हो सकेगी।

"जाने दो फिर और भी कोई है या नहीं ?" नितीन झुँझला पड़ा।

"जी, बाई लोग हैं।"

"तो उनसे भी मुलाकात न हो सकेगी ?"

"माँ जी से तो नहीं हो सकेगी, बड़ी बाई अभी—"

"बस-बस। माधुरी देवी को बुला दो।"

"साब, अभी वह खाना-बना खाती होंगी।"

"कोई बात नहीं। तुम बुलाओ जाकर कार्ड लेते जाओ!"

भृत्य कार्ड लेकर चल पड़ा। निलीन ने प्रसन्नता भरी दृष्टि से राधा की ओर देखा। नहीं, वह अधिक तथा क्रोध, दुःख आदि के आवेष्टन में रह नहीं सकता था ! प्रफुल्लता, आनन्द, आमोद मानो उसके घर की कृत सम्पत्ति थी।

"देखा न राधा, कैसा पकड़ बुलवाया। तुम खड़े क्यों हो यार ? बैठो न।"

और इसके बाद परिहित मैले वस्त्रों से ही राधारमण को संकुचित भाव से चेयर पर बैठना पड़ गया।

दीर्घ प्रतीक्षा के बाद माधुरी सँभरी-सँभरी-सी पहुंची। सेन्टकी गन्ध से कमरा भर उठा।

"वाह-वाह माधुरी, तुम तो बड़ी ही भली बनकर आई हो। बहुत अच्छी लग रही हो। चलो इतनी देर जो हमें बैठाया, सो बेकार न गया।"

माधुरी के भ्रू जरा कुञ्चित हुए, किन्तु उस कुञ्चन की जड़ में जो एक गर्व, आनन्द दबका रहा सो नितीन ने तो नहीं, परन्तु राधा के नेत्रों से छिपकर नहीं रह पाया।

वह गर्व शायद रूप प्रशंसा के लिए हो। या और किसी कारण से हो। किन्तु इस असभ्य नितीन के प्रति जो उसका चित्त विमुख हो रहा है, इस स्तव प्रशंसा के बाद भी विमुख होकर ही रहा या नहीं, यह समझ सकना जरा कठिन था।

"आप आये भी तो बेवक्त हैं न।" जरा-सा हँसकर ली वह।

"बेवक्त? लेकिन दस बजे तो मैं सोकर ही उठता हूँ। रह का समय मेरे लिए सवेरा है।"

"दस बजे सोकर उठते हैं? रोज?"

"रोज नहीं तो क्या?"

"नींद कैसे आती है?"

"मजे से। लो तुम्हारा वक्त ज्यादा खराब न करूंगा। इनसे निपट लो।"

"इनसे किन्तु इन्होंने क्या किया ?"

उस विषय की ओर ध्यान न देकर नितीन ने कहा—

"किया यह, कि रावारमण तुम्हारे इसराज मास्टर बनना चाहते हैं। तुम्हें मास्टर की जरूरत है न ?"

किन्तु उस घृणा, अवहेलना-पूर्ण तरुणी से नेत्रों के प्रति देखकर नितीन हतवाक् हो रहा। और राधा भाग जाना चाहने लगा।

"मीरा के लिए जरूरत थी।"

"मीरा किस चिड़िया का नाम है ?"

"मेरी चचेरी बहन।"

"कोई बात नहीं, तुम न सही तुम्हारी बहन ही सीखे।"

"परन्तु वह इनसे न सीख सकेगी।"

"क्यों ?"—अनायास नितीन ने पूछा।

"क्योंकि इस मैले कुचैलेपन को जगह किसी भी भद्र परिवार में नहीं हो सकती।"

इस रूढ़ व्यवहार ने नितीन जैसे सदा प्रफुल्लित रहनेवाले व्यक्ति को भी असहिष्णु बना दिया। सहसा वह उच्च स्वर से कह उठा—"यही धन्यवादवाली सभ्यता ?"

"यानी ?"

"यही कि उस सभ्यता का सभ्य रीति को मुझ जैसा

गवाँर नहीं समझ सकता। चलो यार, यहाँ तुम्हारी गुजर न होगी। ये लोग गुण का आदर सम्मान करना नहीं जानते, चाहते हैं ऊपरी तड़क-भड़क। बनावटी चीजों के ये पुजारी हैं, चलो राधा।"

राधारमण उठकर खड़ा हो गया। अपमान से उसका मुँह काला पड़ रहा था।

"आप चिढ़ते क्यों हैं नितीन बाबू। हमें अपना सम्मान बचाकर भी तो चलना पड़ता है। जिस समाज में रह रहे हैं उसका सम्मान बचाना भी तो जरूरी बात है। भले आदमी आते-जाते हैं, इस मैलेपन को देखकर क्या कहेंगे वे?"—माधुरी—ने सेण्ट में बसा हुआ रूमाल नाक से लगा लिया।

"अरे तो बाजा बाजा ही सीखना है राधा से या लव-ओव कुछ करना है?"

चाहे यह बात साधारण भाव से कही गयी हो, परन्तु सभ्यता के नाते उसमें कुछ असभ्यता, अश्लीलता थी ही, चाहे यह बात नितीन भले ही अस्वीकार करे, परन्तु माधुरी नहीं कर सकी।

वह उत्तेजित जिस परिमाण में हुई, ठीक उसी परिमाण में क्रोधित भी—"यह कोई सिनेमा हाउस नहीं है, और न चरस-गांजे का अड्डा ही है, समझे न नितीन बाबू? आप लोग जा सकते हैं।"

इसके बाद उन दोनों ने अचम्भे से देखा कि चले जाने के

बदले नितीन जमकर चेयर पर बैठ गया, केस खोलकर सिगार सुलगा ली। फिर मुँह से धुँआ निकालता हुआ बोला—"सिनेमा हाउस नहीं है न ?"

किन्तु इस प्रश्न का अर्थ—ठीक-ठीक न समझ सकने से माधुरी ने क्षुब्ध-विस्मय से उसकी ओर देखने के सिवा और कुछ नहीं किया।

"वही तो मैं भी कह रहा था माधुरी,"—सिर हिलाता हुआ नितीन कहे चला—"स मीं न ? वही तो बात है कि यह कोई सिनेमा घर नहीं है, गृहस्थ का घर है, और गृहस्थ के घर में गृहस्थ जैसी रीति सोहती भी है। बस—इसीलिए इस गृहस्थ, भले आदमी को ले भी आया था। तुम देख रही हो कि इत्र में बसे हुए, टेढ़ी टोपीवाले न कोई तबलची को मैं बाजार से लेकर आया हूँ, और न कोई मनचले छैला को ही। देख रही हो न माधुरी ? सीधा-सादा गृहस्थ है यह गृहस्थ-रीति से एम० ए० पासकर लिया है और बस। अगर इसमें कुछ ऐब है, तो वह यह, कि यह जैसा तो जिद्दी है—वैसा ही चुप्पा। अपनी बातें अपने ही तक रखना चाहता है। उठो राधा। यहां तो कपड़ों की जरूरत है, इसराज की नहीं।"

"आप एम० ए० हैं ?"—माधुरी के अनजान में उसकी जिज्ञासा निकल पड़ी। परन्तु पूछने के बाद सहसा वह उग्र हो उठी—"सुशिक्षित की ऐसी रुचि ?"

नितीन ने मानो माधुरी के वचन को लोक-सा लिया—"बस,

वही तो एक बात है माधुरी, बाहर के आदमी को देखकर हम पल भर में उसके अंतःकरण के आदमी का सब कुछ जान लेने का दावा कर बैठते हैं। मगर क्या सच ही सब कुछ समझ पाते हैं?"

पल-भर में माधुरी परिवर्तित हो गयी, जरा कोमल स्वर में बोली—"अच्छा महाशय, कल आप आइये, मैं बाबू जी और माँ से कन्सल्ट करके आपको अन्तिम उत्तर दूँगी।"

राधारमण उसी पल में उठकर खड़ा हो गया—"धन्यवाद किन्तु अब इसकी जरूरत नहीं है। क्यों? क्योंकि इस घर में मास्टरी करना मेरे लिए सम्भव न होगा।"

आँधी-सी तीव्र गति से वह बाहर चल दिया। एक प्रकार प्रायः दौड़ते-दौड़ते नितीन ने फाटक पर उसे पकड़ा। प्रफुल्ल दृष्टि उसपर डालकर वह बोला—"शाबास, अच्छा किया। लेकिन यार, यह तो कहो, कल से अब क्या करना है? निरा उपवास न? और उसी तरह सुखा-सुखाकर बाल-बच्चों को भी भूखों मारना न? मेरे पास से भी कुछ लेते नहीं—"

नितीन का वचन अर्द्ध समाप्त रह गया। राधा पागल की भाँति निकलकर भागा।

[ १२ ]

अपने जीवन में वह एक दिन था, जिस दिन कि नितीन प्रातःकाल आठ बजे ही सोकर उठा। कारण यह था कि गत

रात्रि में बाँसुरी के घर से सन्देश पहुँचा था—श्यामा बीमार थी।

हाथ-पैर धोकर नितीन ने दो कप चाय पी और कार पर बैठकर चल दिया। अनभ्यासवश बार-बार जमुहाई आ रही थी। इसके पहले उठने के कारण उसे लग रहा था, कि रात भर सोया नहीं। प्रातःकाल शराब वह नहीं पीता था, केवल गरम चाय पी लेता था। सो उस दिन उसने दो कप पी ली।

बाँसुरी के घर पहुँचकर वह चकराया-सा रह गया बीच में प्रायः दो माह वह इधर आया नहीं।

इन दो महीनों में इस वृहत् परिवर्तन का होना उसे असंभव सा लगा।

द्वार पर खड़े भृत्य से नितीन बार-बार पूछने लगा — कि वंशी देवी का घर यही है या नहीं?

और जब भृत्य ने दृढ़ता से कहा कि यही है, तब वह विस्मित दृष्टि से चारों ओर देखता हुआ बैठक में पहुंचा।

बाहर से फाटक से लेकर बगीचे तक अनेक परिवर्तन था, फाटक बहुत बड़ा बन गया था, द्वार दिवाली के स्थान-स्थान पर गुंबज बने थे और उन गुम्बजों पर प्राच्य शिल्पकला के सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए थे। कहीं भारतीय युद्ध-विग्रह के चित्र थे। कहीं कुछ।

पहुंचा नितीन बैठक में, वहाँ पर भी आमूल परिवर्तन था। दिवाल पर युद्ध के चित्र, कृषक के नित्य-नैमित्यिक जीवन के

छोटे-बड़े तथा सुन्दर सफल चित्र अंकित थे। कमरा मोटी चटाई से ढाँक दिया गया था। दरवाजे और खिड़कियों पर खादी के मोटे परदे लटक रहे थे, टेबुल पर सूचि-शिल्प युक्त खादी का टेबुल क्लाथ, कई मोटी-मोटी किन्तु साफ-सुथरी कुरसियाँ। छोटे-बड़े मोढ़े, कई आलमारियाँ किताबों से भरी। नितीन को स्मरण हो आया इसी प्रकार की कुर्सी, मोढ़े बनते उसने इसी शाला में देखे थे। तो यह सब इसी शाला के बने हैं? विचार किया उसने और मीमांसा भी—जरूर।

विस्मय के साथ नितीन को आनन्द भी हुआ कि जिन कामों को वह असाध्य समझे हुए था, जिन कार्यों को वह व्यंग परिहास की दृष्टि से देखा करता था, उसे इस प्रकार से वास्तविक होते देखकर उसके मन में आह्लाद भी हुआ—तो स्त्रियाँ भी ऐसी चीजें बना सकती हैं। और शायद सर्वप्रथम उसके मन में जरा-सी श्रद्धा, सम्भ्रम जागा—इन सबकी अधिष्ठात्री उस वंशी लड़की के ऊपर।—तो इस लड़की ने अनहोनी को भी होनी कर दिखलाया। यह भी एक खासा रोजगार है। कितने ही गरीब पल जाते होंगे।

और कदाचित् वह इसी तरह खड़ा-खड़ा विचार करता रहता—यदि प्रधान परिचारिका आकर उसे सचेत न करती—"आप बाँसुरी देवी से मिलने आये हैं?"

"हाँ उन्हीं से।"

"चले आइये"

"श्यामा कैसी है ?"

"जोर का बुखार है।"

"दवा दी जाती है !"

"हां"।

"कौन डाक्टर देख रहा है ?"

"यहां डाक्टर नहीं बुलाये जाते।"

"फिर बीमारी में इलाज कौन करता है ?"

"स्वयं वंशी जी।"

"वंशी खुद ? —वह क्या जाने इलाज करना।"

चलते-चलते दासी ने विस्मय से लौटकर उसे देखा, फिर कहने लगी—"जान पड़ता है आप उन्हें भलीभांति पहचानते नहीं हैं ?"

"वाह भाई, नई बात सुनाई।"

"वरना आप ऐसा न कहते। यहां के सिवा बाहर भी वे दवा करने जाया करती हैं। उनकी दवा क्या है, मानों स्वयं भगवान आकर विराज जाते हैं। उस साल जाने कितने ही हैजे से मरते हुए आदमियों को इन्होंने जिलाया। इनकी एक एक बूँद दवा अमृत सा काम करती है।"

"ऐसा।"—नितीन आमोद अनुभव कर रहा था—"होमियोपैथिक दवा देती हैं।"

"जी हाँ। बस भगवान ही तो आनकर उनकी दवा में विराज जाते हैं।"

"अच्छी बात है, अगर कभी बीमार पड़ा तो मैं भी आजमा लूँगा।"

परिचारिका उस परिहास को समझ न सकी और न समझने की चेष्टा ही की। श्रद्धापूर्ण स्वर से कह चली वह—"साक्षात् देवी ही तो हैं। उस साल मेरे बच्चे को चेचक निकली, दिन-घड़ी कटना कठिन हो रहा था, बाँसुरीजी ने सुना तो पहुँच गयीं। अब मैं आपसे क्या कहूँ कि किस तरह से उन्होंने बच्चे को जिला दिया।"

उस मोटे पर्दे-युक्त द्वार के निकट पहुँचकर दासी रुकी—

"भीतर चले जाइये।"

"यहीं श्यामा है ?"

"जी हाँ। वंशी देवीने अपने कमरेमें बच्चीको लाकर रखा है।"

"चले आइये।" भीतर से बाँसुरी ने पुकारा।

नितीन ने अन्दर प्रवेश किया। एक साधरण खाट और वैसे ही बिस्तर पर श्यामा आँख बन्द किये पड़ी थी। उसके सिरहाने मोढ़े पर बैठी थी—बाँसुरी। तिपाई पर दवा की छोटी-छोटी शीशियाँ, छोटे काँच के ग्लास रखे थे। एक ओर सुराही, बेंत की टेबुल पर कुछ किताबें और काठ का अलगनी पर मोटी-मोटी साड़ियाँ लटक रही थीं। पलङ्ग के निकट दो-तीन मोढ़े रखे थे। कोने में दो मुग्दर, दो लाठियाँ रखी थीं।

मोढ़े पर बैठकर नितीन ने पूछा—"कब से बुखार है ?"

"पाँच छः दिनों से। इधर कुछ महीनों से आप आये नहीं।

घर का पता भी नहीं जानती थी। मुश्किल से आपके घर का पता लगा।"

"मैं बाहर गया था।"

"आप इसके सहोदर भाई नहीं हैं?" नितीन की आँखों में आँख गड़ाकर उसने पूछा।

"नहीं। इसका भाई है वासुदेव। तुमने कैसे जाना?"

"श्यामा ने कहा। यह अपने भाई के पास जाने के लिए रोती थी।"

"भेज क्यों न दिया?"

"वे लोग यहाँ पर नहीं हैं।"

"कहाँ पर गये हैं?"

"सो नहीं जानती। पड़ोसी बोले बाहर गये हैं।"

"कब तक लौटेंगे?"

"कहने लगे वे लोग—जल्दी ही किन्तु मुझे विस्मय है—" बाँसुरी सहसा चुप हो रही।

किस बात पर बंशी?"

"अपनी लड़की को इस तरह से छोड़, बिना कहे-सुने चले जाना अचम्भे में डालता है।"

"और मैं जो हूँ। यह मेरी भी तो बहन है न?"—बाँसुरी के सन्दिग्ध नेत्रों की ओर देखकर नितीन कहने लगा—

"विश्वास नहीं आया न बंशी? सोच रही हो—इस उच्छृंखल शराबी को कोई लड़की कैसे सौंप सका? यही न?

लेकिन मेरा कहना है—दुनिया के लिये यदि मैं कुछ भी होऊं, परन्तु श्यामा का मैं भाई भी हूं, इतना तो सही ही है।"

इन शब्दों में क्या था सो कौन जाने, सहसा वह गम्भीर प्रकृति तरुणी चंचल हुई, और वैसे ही सहसा पूछ उठी—

"आपकी बहन नहीं हैं क्या ?"

"बहन ? नहीं-नहीं। दुनियां में मैं अकेला हूं।"

"अकेले ?" और न जाने क्यों उस दिन बाँसुरी के कठोर नेत्र सजल हो उठे—"अकेले हो, अकेले—अकेले ? और मैं भी अकेली हूँ।" सहानुभूति से उसका गला भर आया।

इस वचन में कौन सा मधु रहा या हताशा, अथवा दाह, करुणा, सो समझ सकना जरा कठिन है और ठीक किस लिए नितीन आर्द्र, गद्‌गद्‌ हो उठा उसे जान सकना और भी कठिन है। उसने मोढ़े को जरा बाँसुरी के निकट और भी खिसका लिया—"क्या सच ही वंशी ?"

बाँसुरी ने व्यथातुर दृष्टि उठाई। देखा उस दृष्टि को नितीन ने जीभर कर देखा। वह दृष्टि न जाने कैसा। सपने का जाल बुनने लग गयी। आत्महारा, मुग्ध दृष्टि प्रसारित किए नितीन पुलक-विह्वल बैठा का बैठा ही रह गया।

समय निकलता चला जाने लगा। घड़ी में नौकी घण्टी बजी। चकित तरुणी ने उन विह्वल नेत्रों को देखा।

"तो श्यामा को आप ले जाना चाहते हैं या यहीं रखना।"—

पल-पल में बाँसुरी सहमी ।

"जैसा तुम कहो।" श्यामा के सुप्त मुख की ओर देखता हुआ बोला नितीन ।

मैं? किन्तु नहीं । इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकती हूँ।"

"अच्छा बात है। लिए जाता हूँ।"

"जरा ठहरिये । इसका टेम्परेचर देख लूँ।"

बाँसुरी जब देखने में लगी, तब नितीन को इतस्तत विक्षिप्त दृष्टि मुग्दर पर जा पड़ी ।

"मुग्दर कौन भाँजता है?" उसने उत्सुकता से पूछा । हँसी के बोझ से नितीन का स्वर कंठ ही में दबा जा रहा था ।

"मैं किन्तु इसमें हँसने को बात कौन-सी हुई?"

"नाजुक हाथों में और मुग्दर?"

"इसमें विस्मय क्या है?"

असंभव है बंशी । अगर मै ही कसकर तुम्हारा हाथ पकड़ लूँ, तो क्या कर सकती हो तुम? पहले अपने को तो सँभालो, फिर मुग्दर सँभालना । कैसे-कैसे ढोंग रचे हैं। अरे बाबा, स्त्री-स्त्री ही कहलायेगी । मुग्दर हाथ में लेकर मर्द नहीं हो सकती।"

"तो मै कब कहती हूँ कि मैं मर्द होना चाहती हूँ। और जितनी स्त्रियाँ मुग्दर भाँजती हैं—सब मर्द ही बन जाती हैं? यह तो स्वास्थ्य, आत्म-रक्षा और आत्म-उन्नति के लिए है।

भीरु मन को भीरुता के भीतर से उभारने; स्वास्थ्य को ज़िलाकर रखने, वक्तपर इससे काम लेने के लिए—बस।"

"अगर तुम्हारी दो बातें मान भी ली जावें तो तीसरी नहीं मानी जा सकती।"

"कौन सी?"

"वही—वक्तपर काम आनेवाली। औरतें होती ही कितनी हैं? मुट्ठी भर फूल-सी, ओस की बून्द-सी। हाथ में लिया और मसल डाला, बस। अपने को तुम वीर समझे बैठी हो वंशी और शायद मेरे कहने से तुम्हें बुरा भी लगे। बात साफ है, मैं खुशामद करना नहीं जानता। साफ कहना पसन्द करता हूँ।"

"तो साफ ही कहिये न?" वह जरा हँसी।

"कह रहा था—अगर पड़ जाओ किसी दिन किसी मर्द के पल्ले तो करते-धरते कुछ न बनेगा।"

"ऐसा आदमी अभी दुनियाँ में जनमा ही नहीं जो कि मेरा एक बाल भी छू सके।" आत्म-विश्वास और गर्व से धीरे बोली बाँसुरी।

नितीन ने एक एक बार उस वर्द्धित स्पर्द्धा की ओर अवहेलना से देखा, कहा—"ऐसा घमण्ड।"

"किन्तु नितीनबाबू, अपने आप पर विश्वास करने का अधिकार जीव मात्र को है न?

"होगा भी।" अनमना-सा कह उठा नितीन।

"यदि दोपहर के पहले श्यामा को ले जाते तो अच्छा

होता। कहीं धूप न लगे!"

नितीन सहमकर उठ बैठा—"अच्छी बात है। कार खड़ी है। इसे गोद में उठाकर ले जाता हूँ।"

श्यामा को गोद में लेकर नितीन कार पर बैठा।

मुँह फेरे-फेरे बाँसुरी ने कहा—"कल नहीं तो, परसों तक शायद मैं श्यामा को देखने आऊँ।"

"अच्छी बात है।"

कार चल दी।

[ १३ ]

"वासु की खबर मिली?"

"वह इलाहाबाद गया है।"

"क्यों?"

"सुन रहे हैं—उसको अचानक बहनोई की मृत्यु की खबर मिली, उसी वक्त मां को लेकर वह चला गया।" बात हो रही थी नितीन और राधारमण में।

उस दिन श्यामा जरा अच्छी थी, सो दो-तीन दिन के बाद नितीन बाहर निकला था। उसे लग रहा था गत दो दिन में उसकी आयु घट गयी है। और शिरा-उपशिरायें वृद्ध, अकर्मण्य हो रही हैं। श्वास रुक रहा है—हृदय में, सो दो दिन के बाद अवसर मिलते ही बहिर्मुख चित्त उसका, आमोद, विलास-प्रिय मन उसका, बाहर की ओर निकल भागा। पुराने भृत्य को श्यामा के निकट रखकर उसने कार निकालने को आज्ञा दी।

गेट पर भेंट हो गयी उसकी राधा से।

"चलो जरा घूम आवें।" राधा का हाथ पकड़कर नितीन ने कार में बैठा लिया। तब शोफर गाड़ी लेकर एक ओर चल दिया। कहां जाना है, सो न प्रभु ने कहा, न भृत्य ने पूछा।

"श्यामा अब कैसी है ?" राधा ने पूछा।

"अच्छी।" चिर प्रफुल्ल स्वर से नितीन ने कहा।

"तुम बड़ी झंझट में फँस गये न दादा।"

"कुछ नहीं। हां दो दिन घर में रहना पड़ा, जरा तकलीफ हुई, बस। उन दो दिनों की कसर आज निकाल लूँगा। घर का क्या हाल है ?"

"खराब। उनकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है। कहीं कुछ काम-धन्धा लगता नहीं। तुम्हारे जान में कहीं नौकरी हो तो कहो।"

"है। लेकिन—"सहसा नितीन गम्भीर हो गया।

और अधीर स्वर से राधा बार-बार पूछने लगा—

"कहां पर है ? मुझे ले क्यों नहीं चलते ?"

"जाने दो। तुम वहाँ नहीं जा सकोगे।"

"मैं सब जगह जा सकता हूं, सब कुछ कर सकता हूं, कहो-कहो।"

अविश्वास से नितीन ने सिर हिलाया—'नहीं जा सकोगे जी। घृणा न करते हो शराब और वेश्या से।"

"घृणा ? नहीं जिसके बाल-बच्चे भूखों मरते हों, उसके

लिए घृणा कैसी ? चलो-चलो।"

"चलोगे? वेश्या की नौकरी है।"

"हां दादा, चलो-चलो।"

नितीन स्तब्ध हो रहा—कैसी भीषण परिस्थिति में पड़कर राधा की नाई निष्ठावान व्यक्ति वेश्या का दासत्व स्वीकार कर रहा है, इस बात को विचारने जाकर वह सिहर उठा।

"प्यारी बाई को जानते हो तुम ?" देर के बाद नितीन ने पूछा।

"नाम सुना है। वही जो शहर की नामी वेश्या है। उसी की बात कह रहे हो न ?"

"बस बस, वही। उसे एक मास्टर की जरूरत है। इसराज सीखना चाहती है।"

"तो चलो मैं तैयार हूँ।"

उसके आग्रह के सामने नितीन चुप हो रहा।

कार प्यारी बाई के द्वार पर लगने भी न पाई थी कि व्यग्र चरणों से राधा उतर पड़ा। वे दोनों भीतर पहुंचे।

और जब मित्र के लिए नितीन का जी आशंका से पूर्ण हो रहा था, तब उसने विस्मय से देखा—चिर-परिचित की भांति और अत्यन्त मनोयोग से राधा प्या ी को इसराज के परदे समझाने में लगा है।

थोड़ी देर नितीन देखता रहा, फिर ट्रे पर से ह्रिस्की की बोतल उठा ली। और बिना पानी व सोडे के ग्लास का ग्लास

निःशेष कर बैठा।

एक—दो—तीन, प्रायः पन्द्रह मिनट में उसने बोतल खाली कर दी।

"सब पी गये ? मेरे लिए और इन बाबू के लिए कुछ तो छोड़ देते।" प्यारी ने कहा।

"वह उल्लू क्या जाने शराब पीना, तुम्हारे लिए थोड़ी-सी बची है। लापरवाही से नितीन ने कहा।

आश्चर्य-चकित नेत्र से प्यारी ने राधा को देखा—"आप नहीं पीते ?"

"नहीं।"

"मेरे कहने से जरा चखकर देख लेते। यह चीज ऐसी है कि जिन्दगी को हरा कर देती है।"

"माफ करो बाईजी, न मैंने कभी पी है और न पिऊँगा ही।"

"हटाओ भी प्यारी, भारी जिद्दी है।"

"इधर देखिये बाई जी, छड़ी इस तरह से पकड़ी जाती है।" राधा इसराज की छड़ी हाथ में लेकर बोला।

"प्यारी ने उसे देखा, क्लान्त स्वर से कहा—"आप तो एक ही दिन में मुझे पण्डित बनाना चाह रहे हैं। अरे भाई, कल के लिए भी तो कुछ छोड़ो।"

"कल के लिये ? किन्तु अभी तो सा भी नहीं निकाल सकीं और आप कहती हैं—पण्डित बनाना चाहता हूँ।"

"और जो मैं थक गई हूँ सो ?"

"इतनी जल्दी ?"

नितीन, जो कि अब तक इनकी बातें सुन रहा था और मुँह फेरे-फेरे हँस रहा था, वह अब चुप न रह सका, कह उठा—"यार, तुम भी पागल हो। इन पंचायतों से तुम्हें मतलब ? रोज हाजिरी दिया करो और बस। सीखे न सीखे तुम्हारी बला से। महीने पर मुट्ठी भर रुपये ले लेना।"

"मुफ्त में ? नहीं नितीन दादा, ऐसा नहीं किया जायगा मुझसे।"—पल भर में वह अपनी बेकारी को भूल गया। भूल गया उस अनशन-क्लिष्ट परिवार का करुण दृश्य, भूल गया राधा चिकित्सा और अन्नाभाव से पत्नी का वह प्रेत-सा मुख, पल भर में भूल गया वह सब कुछ। दृढ़-स्वर से कहा उसने—"नहीं—ऐसा मैं नहीं कर सकता हूँ।"

प्यारी बाई के मुख में विस्मय घना हुआ और नितीन के नेत्र में सम्मान और इन सबको ओर ध्यान दिये बिना ही राधा उठकर खड़ा हो गया।

सहसा प्यारी खिलखिला पड़ी और ऐसे सहसा उसने राधा की बाँह में अपनी बाँह डालकर खींचा, कि वह सँभल न सका, बाई जी के ऊपर गिर पड़ा। प्यारी ने अपने भुजाओं में समेट-कर उसे बैठा लिया।

इस अयाचित वेश्या-स्पर्श से राधा घृणा से सिहर उठा। और स्वयं उसके समझने से पहले इस बात को प्यारी समझ गयी। वह सहमकर बैठी, बोली—"आप बड़े भावुक हैं। मन

आपका उदार है। अगर सच पूछिये, तो इस पहली पहचान से ही आपने मेरी श्रद्धा खींच ली है। इसे आप अपना समझें और मुझे अपनी छात्री। जैसा आप कहेंगे—मैं वैसा करूंगी। आज पहला दिन है, इसी से थोड़े में मैं हाँफ गयी। कल से देखना—किस खूबी के साथ मैं सीखती हूँ।"

और इसके बाद राधारमण का विमुख चित्त प्रसन्नता से भर उठा। अभी-अभी जिसके स्पर्श से वह घृणा से सिहर रहा था, उसी के प्रति उसके मन में सम्मान खिंच आया। और अभी जो वहां से निकल भागने की सोच रहा था—वही राधारमण वहां पर जमकर बैठ गया। अपने आचरण के लिये लज्जित हुआ।

नशीले नेत्रों को खोलने का व्यर्थ प्रयास करते हुए नितीन ने कहा—"इधर चली आओ प्यारी। उस गँवार को बैठा रहने दो। कोई अच्छी चीज सुनाओ।"

इसके बाद प्यारी शराब से ग्लास भरने लगा और दोनों बैठे पाने लगे। एक दूसरे के कन्धे पर मस्तक रखकर हँसी मजाक करने लगे; जिस कुत्सित हास-परिहास के सामने राधा बैठा रह गया—एक मूर्ति की भाँति। उसका सभ्य मन घृणा से संकुचित हो रहा था, उसका जी चाहने लगा—पक्षी की भांति उड़कर वह अंतरीक्ष में भाग निकले। धरती पर पैर रखते उसे घृणा हो रही थी। वह जानता नितीन मद्यप है, चरित्रहीन है। वेश्याओं की उछृङ्खलता के विषय में भी

यद्यपि उसकी जानकारी थी; किन्तु फिर भी उस सत्य के वास्तविक परिचय से वह अधीर हो उठा। सत्य-सत्य होकर रहा है, सो ठीक है, और यह भी झूठ नहीं कि वह सत्य अब तक राधा की दृष्टि के बहिर्भूत होकर रहा है, किन्तु आज जब वही सत्य नग्न रूप से उसकी आंखों के सामने आ गया, तब वह घृणा से केवल सिहर ही नहीं उठा, वरन् उसका पुरुष चित्तपूर्ण रूप से विद्रोह कर उठा।

वहां बैठे-बैठे राधा की श्वास रुकने-सी लग गयी, हृदय वेदना से भर उठा और जिस पल वह वहां से उठकर भागने को हुआ, ठीक उसी घड़ी एक दृश्य उसकी आंखों के सामने आकर अड़ गया।

वहां ? शतछिन्न मलिन शय्या पर एक नारी पड़ी हुई थी !

नारी ? वह नर-कंकाल हो। उसके एक-एक अस्थिपञ्जर गिने जा सकते थे। मुँह से निकला हुआ खून तकिये पर जम गया था। नग्न बालकों के क्षुधा-पीड़ित चीत्कार से उस मृत्यु-पथ-यात्री के कोटर प्रविष्ट नेत्रों से जलधारा बह चली थी।

और ? नहीं,...........इसके आगे राधा और कुछ देख नहीं सका। सुन नहीं सका। हाथों से मुँह ढांककर वह बैठा रह गया।

कमरे में उच्छृंखल आमोद का प्रवाह था। अर्द्धनग्न बाई जी नितीन की गोद में पड़ी-पड़ी गा रही थी। नितीन भी कभी विकृत स्वर से उस गान में भाग ले लेता। और राधा ! यद्यपि

उसे एक-एक क्षण असह्य प्रतीत हो रहा था, उस पशुवत् दृश्य के सामने बैठी उसकी आत्मा वेदना से रो रही थी, घृणा से मुँह फेर रही थी; किन्तु फिर भी उसे वहीं जमकर बैठा रहना पड़ा।

और नहीं तो वह करता ही क्या? वह वहां से भाग भी नहीं सकता था, बैठ भी नहीं सकता था, फिर ऐसा एक राधारमण करता क्या?

अर्द्ध रात्रि की गम्भीरता में अचेतन-प्राय नितीन को घर पहुँचाकर जब राधा घर लौटा, तो लगने लगा उसे, उसकी आयु पूर्णतया निःशेष हो चुकी है और जीने का उद्देश्य भी वह पथ की धूलि में खो बैठा है। उसे लगने लगा—विश्व भर में केवल दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध है, और उस दुर्गन्ध में उसका श्वास अभी-अभी घुलकर निश्चिह्न हो जावेगा।

भागकर राधा एक ओर चल पड़ा। कब तक वह दौड़ता चला जाता, सो कहना जरा कठिन है। गंगा-तटपर सहसा उसकी गति रुद्ध हुई। उसने अँजुलि भर-भरकर जल पिया। वहां बैठकर घण्टों सिर धाता रहा, तब उठकर घर की ओर मुड़ा।

और परम आश्चर्य तो यह है कि प्रातःकाल जब राधारमण घर पहुँचा तो पहले उसने अपनी लड़की से पूछा—"कल तुम लोगों ने कुछ नहीं खाया न? अच्छा तो चूल्हा जलाओ, मैं बाजार जा रहा हूँ! और तुम्हारी माँ! वह अभी जी रही है न?"

बालिका अवाक्-विस्मय से उसका मुँह ताकने लगी, तब-तक शाधारमण निकलकर चल पड़ा।

[ १४ ]

नितीन की प्रासाद-तुल्य अट्टालिका और उसके प्रत्येक कमरे दालानों में संध्या की बेला सेन्ट, पुष्प की सुरभि, धूप की सुगन्धि और उज्ज्वल बिजली के प्रकाश में बसी-सी खिलखिला रही थी। शीत की नवोढ़ा संध्या, उस दिन उस घर में नवोढ़ा बनकर नहीं रह सक रही थी। मानों उस विलासिता के भीतर वह अपने चिरकाल की लज्जा को खोकर विलासिनी, प्रगल्भा बनी खिलखिलाने में लगी थी।

द्वितल के उस सज्जित और सुगन्धित कमरे में अधलेटा पड़ा हुआ नितीन उस सौंदर्य की रानी की ओर अपलक नेत्रों से देख रहा था। शराब के नशे में उसके नेत्र झुके पड़ रहे थे। सन्ध्या के पूर्व से उसने शराब पीना आरम्भ कर दिया था—नित्य की भाँति।

साफ-सुथरे बिस्तर पर निद्रित थी श्यामा, और बाँसुरी उसके सिर पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। दो दिन से श्यामा की दशा अधिक खराब थी। ज्वर के मारे वह बेसुध थी। बाँसुरी प्रातःकाल केवल उसे देखने के लिये आयी थी, किन्तु उसकी उस शंकापूर्ण दशा को देखकर रो वहीं रह गयी थी।

उस दिन का जीवन नितीन को जाने कैसा नया-नया सा लग रहा था। भोजन से लेकर प्रति कार्य में परिवर्तन था, शृंखला थी। प्रातःकाल से वह रूपवती, गुणवती नारी उसकी अतिथि बनकर थी। किन्तु विस्मय इतना है कि स्वयं अपने घर ही में बन गया था नितीन—अतिथि, और अतिथि बनी थी गृह स्वामिनी!

बड़े यत्न-आदर से उस घर की विशृंखला, अव्यवस्था को बाँसुरी ने व्यवस्थित किया और अपने हाथ से भोजन बनाकर यत्नपूर्वक नितीन को भोजन भी कराया, स्वयं सामने बैठी पंखा झलने लगी थी। फिर दोपहर में चाय बनाई थी, गरम-गरम कचौड़ी के साथ नितीन को जलपान कराया था। फिर श्यामा की सेवा में माता की भांति स्नेह-प्रेम में जुट पड़ी थी।

नितीन का जी इस नारी के प्रति श्रद्धा, सम्भ्रम से भर उठा। वह देख रहा था उसी रूपसी को, और विचार रहा था, उसीकी बातें।

"इस समय ज्वर कम है" थर्मामीटर देखते हुए बाँसुरी ने कहा।

और जब सीधा देखने जाकर उसकी दृष्टि विनिमय हो गयी नितीन की सभ्यता वर्जित दृष्टि के साथ, तब बाँसुरी रुष्ट हुई; परन्तु पल भर में वह सहमी, धीरे बोली—"आप बाहर जाकर टहल न आवें। मैं यहां बैठी हूँ।"

नितीन सहमकर उठा, कहा—"जाता हूँ" फिर चलते से

रुका "मैं जल्दी लौटूंगा, तुम्हें गाड़ी को किस-वक्त जरूरत होगी ?"

"मुझे ? किन्तु क्यों ?"

"घर न जाओगी ?"

"श्यामा की ऐसी अवस्था में मैं जा सकूँगी ?"

प्रश्न का ढंग सीधा था, किन्तु नितीन को लगा उस प्रश्न में स्नेह का तिरस्कार भरा हुआ है। और नितीन को उस बात पर खराब लगने के बदले लग गया बहुत ही अच्छा।

नितीन किसलिये पुनः आकर चेयर पर बैठ गया सो कह सकना कठिन है।

"रात में तुम रह सकोगी यहां वंशी ?" निविड़ दृष्टि बाँसुरी के मुँहपर निबद्ध किये पूछा नितीन ने।

"क्यों ?"

"तुम जानती हो न मैं शराबी हूँ ?"

"फिर इनसे क्या ?"

"क्या इनसे, वंशी—"

"इससे क्या ? जानती हूँ आप शराब पीते हैं और इस वक्त भी पी है।"

"वही जो कह रहा हूँ; शराबी पर क्या विश्वास ? लोग मुझे लम्पट कहते हैं।"

"और इससे भी क्या ?"

"उसी लम्पट के साथ रात में अकेली तुम रह सकोगी ?"

स्नेह भरी हँसी से बाँसुरी का मुँह और मनोरम दीखने लगा—"यदि आप शराबी हैं, लम्पट हैं, तो रहा कीजिये। किन्तु मेरे पास तो आप—आपही होकर है न?"

यह बात नितीन को ऐसी भली, ऐसी नवीन लगी, कि देर तक वह कुछ न कह सका।

"आपको शराब बहुत अच्छी लगती है क्या?" आनत मुख से बाँसुरी ने पूछा।

"शराब? शायद नहीं लगती।" अनमना नितीन ने उत्तर दिया।

"फिर आप पीते क्यों हैं?"

"लेकिन रोकनेवाला भी तो कोई नहीं है बंशी! और पिये बिना रहा भी नहीं जाता। दुनियां में मैं अकेला हूँ—न साथी, न सङ्गी। अगर शराब को साथी बना लिया—तो बुरा क्या किया?"

उस दुश्चरित्र, दाम्भीक, अविनयी युवक पर नारी की सहज, स्वाभाविक करुणा से बाँसुरी का जी भर आया—अहा बेचारा अकेला है, अपना कहने को कोई नहीं—कोई नहीं। नौकरों की दया पर दिन कटा करते हैं। रोग-शय्या पर आंतरिक स्नेह लेकर कोई सेवा करनेवाला नहीं! अकेला अभागा—कभी—गहरी रात की एकांत शय्या पर पड़ा-पड़ा सिसका करता होगा। कभी एक दिन रात की चुप्पी में मौत इसे उठाकर ले

भगेगी। छुप-छुपकर वह आवेगी—गूँगी, बहरी की तरह और इस राजकुमार के सिरहाने झाँकने लगेगी। तब इसका कण्ठ मरुभूमि की तरह सूख जावेगा, तृष्णा से स्वर कण्ठ ही में आबद्ध हो रहेगा। बूँद भर पानी के लिये यह श्रीमान राजकुमार छटपटाता रहेगा और तब मौत इसे देखकर व्यंग की हँसी हँसेगी और उठा ले भागेगी। न कोई समव्यथी, न कोई हमदर्द! नहीं-नहीं कुछ नहीं; कोई नहीं यह राजकुँवर उस दिन भिखारी की तरह चल बसेगा! और इतना विचार पल-पल में बाँसुरी के मन में उठा। उस विचार में आच्छन्न उसका जी इस चरित्र-हीन युवकपर दया, करुणा, सहानुभूति से पूर्ण हो उठा।

"अकेले क्यों रहते हैं?"

"क्यों रहता हूं? मगर किसे पुकारूँ—साथी के लिये? मेरा कोई भी तो नहीं है न।"

"वही कहना है। यदि अपना कहने को आज कोई नहीं है, तो वह कसूर किसका है?"

"शायद विधाता का हो, लेकिन मेरा नहीं है। इतना तो तुम मानती हो न?"

"नहीं।"

"नहीं?"

"क्यों मानूँ?"—प्रबल आपत्ति के साथ वह कहने लगी—"आप शादी क्यों नहीं कर लेते हैं? जीवन-सङ्गिनी चुन लेना

आपके अपने हाथ में है। अकेले क्यों रहते हैं? सब दोष आपका है।"

इन बातों में कौन-सा सन्देश, कैसी वह मिठास थी—कौन जाने? नितीन को लगने लगा—एक अदृश्य शक्ति खींचकर उसे बाँसुरी के निकटतर कर रही है।

और अपने भी अनजान में वैसे ही खिंचा हुआ वह बाँसुरी के समीप पहुँच गया। और उसी तरह सम्मोहित भाव से उसने बासुरी का हाथ अपने हाथ में उठा लिया—"क्या सच कहती हो वँशी?"

और कदाचित पल भर के लिए बाँसुरी की सुध जाती रही हो, कदाचित् न भी गई हो। उसने धीरे से अपना हाथ खींच लिया, पूछा—"याने?"

"पूछ रहा हूँ-क्या तुम मेरे साथ रह सकोगी? मेरी जीवन-सङ्गिनी बन सकोगी वंशी?"

और बांसुरी के नेत्र झुक पड़े। उसी समय उसके पैर के निकट बैठ गया नितीन। कहने लगा—"मानना, न मानना—तुम्हारे हाथ में है वंशी। लेकिन सच कहता हूँ। अभी कुछ पहले तक भी मुझे शादी में रुचि न थी। छिपाऊँ ही क्यों? मैं नित नवीन का पुजारी हूँ। प्रेम मेरे पास एक खेल ही है। लेकिन वही मैं जाने क्यों तुम सी दाम्भिका पर खिंच आ रहा हूँ। अभी मेरे मन में न जाने यह कैसा नयापन उत्पन्न हो रहा

है। शायद तुमसे मैं शादी भी कर सकता हूँ। तुम राजी हो वंशी ?"

"नहीं।"—उसने संयत स्वर से कहा—"और न प्रेमालाप सुनने के लिए ही मैं यहां पर आई हूँ नितीन बाबू! आपका बर्ताव भद्रता के बाहर जा रहा है।"

"अभद्र तो मैं हूँ ही। कौन-सी नयी बात है?" नितीन उठकर खड़ा हो गया—"और उसी अभद्र, शराबी के घर रात में तुम जान-बूझकर रह रही हो वंशी, सो भी गलती नहीं है? चाहे तुम्हारा भद्र समाज इस रहने की प्रशंसा करे, लेकिन मैं शराबी नहीं कर सकता हूं।"

"सबका दृष्टिकोण एक-सा नहीं रहता है नितीन बाबू! किन्तु सभ्यता सभ्यता होकर ही रहती है।"

"सबके पास?"

"जरूर।"

"बिलकुल गलत। जिसे तुम सभ्यता कहती हो, उसे ही मैं असभ्यता समझता हूँ। बात सामने है, तुम एक एक अविवाहित और शराबी के घर अनायास रह सकीं, लेकिन मेरे दृष्टिकोण से यह अनुचित है। इसे मैं सभ्यता नहीं कह सकता हूं। तुम कैसे कह सकती हो कि कमजोर औरत तुम, एक शराबी के साथ रात बिताने के बाद शुचि होकर ही चली जाओगी?"

"बस, बहुत हो गया। अपमान की भी सीमा रहती है।

दूसरी बात—आप-सा व्यक्ति मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।"

नितीन ने आँखें खोलकर उस मूर्त स्पर्द्धा की ओर देखा और क्रोध के बदले उसके नेत्रों में मोह की लालसा व्याप गयी—रूप—रूप ऐसा रूप!

मुग्ध-विस्मय से नितीन उसकी ओर देखने लगा।

और कब वह बाँसुरी के पास पहुंचा, कब उसने अपनी बांहों में जबरन ही उसे समेट लिया, सो वह स्वयं ही नहीं जान सका।

एक जोर का धक्का लगा, नितीन का मस्तक दीवाल से टकरा गया।

जब नितीन की चेतना लौटी, तब उसने पाया—श्यामा को छटपटाती हुई, और बांसुरी को उसकी परिचर्या में नियुक्त।

नितीन उठकर बैठा और कदाचित् उसके जीवन में वह प्रथम बार एक अपरिचित लज्जा, ग्लानि ने उसे घेर लिया। उसी समय एक महीयसी रानी-सी बाँसुरी दबे पैर उसके निकट पहुंची, आदेशपूर्ण स्वर से कहा—"श्यामा को ज्वर जोर का है। आप कुछ खाकर सो रहिये। नौकरों से कहते जाइये हल्ला न करें, मुश्किल से वह सोई है।"

परम आश्चर्य तो यह है, कि इस कथन के बाद वह दुर्दान्त शराबी एक बाध्य भृत्य की भांति कमरे से निकल गया।

[ १५ ]

तीसरे दिन श्यामा का ज्वर छूट गया। बांसुरी घर जाने के लिए व्यस्त हुई। उस घटना के बाद नितीन ने अन्तःपुर में आना एक प्रकार से छोड़ ही दिया था।

उस प्रातःकाल में बांसुरी ने नितीन को बुलवा भेजा।

"मुझे बुलाया है?" दीवाल की ओर मुँह फेरे-फेरे नितीन ने पूछा।

एकांत कमरे में स्टोव के सामने बैठी बांसुरी श्यामा के लिए पथ्य तैयार कर रही थी।

"हां, आजकल तो आपके दर्शन दुर्लभ हैं। बुलवाना ही पड़ा।" हँसमुख से वह बोली, ऐसे बोली जैसे कि कहीं कुछ हुआ ही न हो।

नितीन ने मुँह उठाया, इतनी देर के बाद—"वंशी"।

नितीन ने पुकारा और एकदम चुप हो रहा। उसे देखकर प्रतीत होता—जैसे कि हृदय में कोई संग्राम छिड़ा हो और वह उसे दबाने की चेष्टा कर रहा हो।

"मैंने जैसा—जो कुछ बर्ताव किया है तुमसे वंशी"-थोड़ी देर के बाद सहज स्वर से कहने लगा वह—उसके बाद कुछ लुका-छिपाकर, अपने को बचाकर कुछ कहना, करना और एक्टरों की तरह एक्टिंग करना—हां चाहे मैं कैसा भी बुरा क्यों न होऊँ—लेकिन वैसा करना मेरे लिए एक असम्भव बात है। और न नाटकीय ढङ्ग से उसके लिए माफी मांगना ही मैं

पसन्द करूँगा। कहना सिर्फ इतना है, कि चाहे मैं खराब होऊँ, शराबी बदमाश होऊं, लेकिन कभी मैंने किसी से जबरदस्ती नहीं की। तो उस दिन की बात। उस दिन—नहीं—जाने दो उस बात को। कहना इतना है कि वह मेरी जिन्दगी में पहला दिन था—जिस दिन कि मैंने तुमसे जबरदस्ती की। उसके लिए मुझे खेद है बंशी। आज तुमसे कहना है कि आगे के लिए तुम मुझसे निश्चिंत रह सकती हो, और कभी जबरदस्ती तुमसे न करूँगा।"

"आपपर तो मैं अविश्वास नहीं कर सकती नितीन बाबू।" शान्त, अनुतप्त स्वर से उत्तर दिया बांसुरी ने।

विस्मय—पुलक से बोला नितीन—'सच कहती हो ?"

"बिलकुल सच। चाहे आप कुछ भी हों, किन्तु हैं तो आप आदमी ही न। यदि आप में बुराइयां हैं—तो गुण भी हैं। कभी आप में भी तो देवत्व जाग पड़ता है न। चाहे आप जैसे भी जो कुछ हों, किन्तु हैं दोष-गुण युक्त आदमी ही।"

"बांसुरी—"

"सुन जो रही हूँ। हां—और आप में जो एक सत्, सुन्दर वास्तविक मनुष्यत्व है—उसे कौन सा ऐसा दोष है, कौन सा ऐसा पशुत्व है, कौन सा ऐसा राक्षस है—जो निगलकर बैठ सकता है ? मैं उस मनुष्यत्व की कभी—किसी भी दिन अवहेलना कैसे कर सकती हूँ, नितीन बाबू ?"

नितीन ने पूर्ण श्रद्धा, सम्भ्रम से उस वल्लरी-सी तरुणी को

ओर देखा—"तुम कोई नवीन दुनियां की जीव हो, सो मुझे मानना ही पड़ता है वंशी।"

"नहीं-नहीं। मैं इसी दुनियां की हूँ और इसी की होकर रहना भी चाहती हूँ। समझे न आप? यह दुनियां मुझे प्यारी है। इसी का गर्व भी तो करती हूं। अच्छा जाती हूँ।"

"जाती हो? सच ही जाती हो? इतनी जल्दी वंशी।"

वह बांसुरी के एकदम निकट पहुँच गया। बांसुरी ने रोकने की चेष्टा मात्र न की।

"चलूँ अब। यहां का काम मेरा खतम हो गया है, अब शाला में लौटना जरूरी है।"

"जाओ। उस दिन मैंने जो कुछ किया, उसके लिये क्या माफी मांग सकता हूँ?"

"माफी तो आपको तभी मिल सकेगी—जब कि आप कहना मानें।" अपूर्व भङ्गी से बांसुरी ने कहा।

"कहो—तुम क्या चाहती हो?"

"मेरी मांग? लेकिन उसे पूरी भी कर सकेंगे?"

"कोशिश करूँगा। कहो।"

"शराब पीना—यदि हो सके तो छोड़ दीजिये।"

"कोशिश करूंगा,—समझी न वंशी? कोशिश—कोशिश! यह मांग तुम्हारी है, और इसके लिए मैं कितनी कोशिश करूँगा, इसे भी तो तुम समझ रही हो न वंशी?"

बांसुरी चुप रही।

वह कहने लगा—"और वंशी को यह मांग मेरे पास कैसी कीमती होकर रहेगी, इसे भी समझ रही हो न?"

और बांसुरी? किन्तु वह दाम्भिक बांसुरी, वीर वंशी, अपनी शक्ति के आगे और सबको तुच्छ समझनेवाली, शिलासम कठोर चित्त वंशी, और नारी बांसुरी इसके बाद लाज-रक्तिम नेत्रों को उठा भी तो नहीं सकी न। पल भर नितीन ने उस अपरूप तरुणी को देखा, फिर कहा—"बस, अब चली जाओ वंशी। मैं तुम्हें ज्यादा अपमानित करना नहीं चाहता, मेरी आंखों के सामने से हट जाओ।"

बांसुरी ने प्रशान्त दृष्टि उठाई। कुछ कहने को हुई, फिर चुपचाप निकलकर चल दी।

नितीन ने एक ओर मुँह फेर लिया, बांसुरी ने जाते-जाते लौट कर देखा, उसे लगने लगा—वह खड़ा हुआ युवक अपनी पूरी शक्ति को एकत्रित कर किसी अन्याय को रोकने के लिये युद्ध में लिप्त हो गया है। उसकी शिरा-उपशिरायें स्फीत हो रही थीं, गोरा रंग लाल पड़ गया था। क्षणभर बांसुरी ने नितीन को विगलित करुणा से देखा, और शान्त गति से कार पर बैठ गयी।

हार्न ध्वनि जब दूर—बहुत दूर से ध्वनित होने लगी, तब नितीन अपने स्थान से हटा। विक्षिप्त-सा कमरे में टहलता रहा।

इसके बाद नितीन बैठक में पहुँचा, आलमारी खोली,

शराब की बोतल निकाली, भरा ग्लास, मुँह तक उठाया और तभी उसे दूर फेंककर चुपचाप बैठ गया। सहसा वह जोर से हँस पड़ा और पुनः आलमारी के निकट पहुँचा।

[ १६ ]

नितीन का जी उस दिन उदास हो गया था। सदा प्रफुल्ल मुखपर वेदना की छाया थी। वह स्वयं विस्मित था, अपने इस परिवर्तन पर। उसे लग रहा था—आमोद की वस्तुएँ सब खो गयी हैं।

दस बजे दिन की बेला वह चाय पीने बैठा था। छोटी लड़की श्यामा, गुड़िया-सी श्यामा अपने दुबले-पतले हाथों से चाय का प्याला भरकर देने लगी—"भैया, टोस्ट तो तुमने खाया नहीं।"

"खाया नहीं, तू देखती नहीं। मैं खाता ही चला जा रहा हूँ। तू खा सकती है इतना ?"

"मैं ? किन्तु मैं इतना कैसे खा सकती हूँ ?"

"क्यों श्यामा ?"

"मेरा पेट तुम्हारे जैसा इतना बड़ा थोड़े ही है।"

"कितना बड़ा बिटिया ?"

"इतना बड़ा।" श्यामा ने दोनों हाथों से बतलाया, जिसे देखकर नितीन् जी खोलकर हँस पड़ा और उस हँसने से उसके हृदय पर दबा बोझ कुछ हलका-सा हो गया। उस हँसी के साथ वह अपने चिर-परिचित आमोदपूर्ण जीवन में लौट आया।

"मेरा पेट बहुत बड़ा है श्यामा ?"

"जा-ओ—मैं नहीं जानती ।"

बड़े प्रेम से नितीन ने उसके सिर पर हाथ फेरा—"बाजार जा रहा हूँ, तेरे लिये क्या लाऊँ ?"

"कुछ नहीं ।"

"कह दे बिटिया—रानी बहन !"

"कुछ नहीं ।"

"जरीदार साड़ी कौन पहनेगा ?"

"क्या होगी ?"

"तू पहनेगी ।"

"मैं नहीं पहनती । मेरे लिए केशरिया रङ्ग की खादी की साड़ी लाना !"

"पगली । खादी तुझ से सँभलेगी भी ?"

"सँभलेगी । मौसीजी कैसे पहनती हैं ?"

"तेरी मासी का मेरी तरह पेट होगा, इसीसे सँभाल लेती होगी ।"

"कितना झूठ कहते हो तुम भैया । मोसी कैसी सुन्दर हैं, कितनी दुबली-पतली हैं । उनका पेट तुम्हारे जैसा है भी ?"

अगर तेरी मोसी को कभी देखूँ तो पता चले ।"

"फिर झूठ ?"

"उन्हें तुमने नहीं देखा ?"

"झूठी श्यामा । मैंने कब देखा ?"

"बाँसुरी मौसी को तुमने नहीं देखा?"

"अच्छा—अच्छा। उसे तुम मौसी कहती हो?"

"मौसी तो वह हैं ही मेरी।"

और उत्तर में नितीन जब तक कुछ कहे, तब तक द्वार पर से वासुदेव का स्नेहपूर्ण स्वर ध्वनित हो उठा—"वाह, यह तो मजे में बैठी अपने भैया को चाय पिला रही है, और मैं उधर सोच में मरा जा रहा था।"

"कौन वासु? आओ। श्यामा अब अच्छी है। बचने की आशा कहाँ थी? उधर तुम्हारा भी पता नहीं था।"

"संकट में पड़ गया था नितीन! बहनोई मर गये न, सुना होगा।"

"सुना था। फिर?"

"फिर क्या, विधवा बहन और बच्चों को लेकर चला आया।"

"तब क्या होगा? खर्च कैसे चलेगा।"

"सब चल जायगा नितीन!"

"नौकरी कर रहे हो क्या?"

"कहाँ? नौकरी की तलाश करते-करते हैरान हो गया।"

"राधा की नौकरी लग गयी है।"

"कल उससे भेंट हुई थी। कह रहा था कि छोड़ आया है।"

"क्यों छोड़ा?"

"वह प्यारी बाई के यहाँ कर रहा था न?"

"हाँ। हंसराज मास्टर था।

"वही। कहता था—गन्दापन सहा नहीं गया। उससे भूखों मरना अच्छा है।"

नितोन चुप रह गया।

"नौकरी के लिए घबराते क्यों हो भैया? मौसी के पास चलो, राधा भैया को भी लेकर चलो, वहाँ पर काम ही काम है। मौसी सबको काम देती हैं।"

छोटी श्यामा अपनी छोटी समझ लेकर कहने लगी।

"तो अब मैं तेरी मौसी के पास चलकर बीड़ी बनाना सीखूँ?' परिहास से कहा बापु ने। परन्तु उस दिन उस परिहास में नितोन योग न दे सका, उसने मुह फेर लिया।

"श्यामा को देखने के लिए माँ अधीर हैं नितोन।"

"हाँ हाँ, ले जाओ श्यामा को। घबराने की बात ही है। मोटर खड़ी है, उस पर जाओ।"

इसके बाद तीनों उठे। श्यामा और बापु मोटर पर चल दिये और नितोन पैदल ही एक ओर चल पड़ा। सहसा उसे राधाका स्मरण हो आया और उसीके घर की ओर मुड़ गया।

जब वह राधा के खुले दरवाजेपर पहुँचा, तब शीतकी मीठी धूप संसार पर पड़ी सो रही थी। द्वार संपूर्ण खुला हुआ था। उस खुले द्वारके सामने खड़े हो नितोन ने कई बार पुकारा, कोई उत्तर न मिला। नितीन ने फिर न कुछ सोचा और न विचार ही किया, सीधा अन्दर चला गया।

एक ओर मिट्टी की परछी, फिर छोटा-सा आंगन ! आंगनके उस ओर भी एक वैसी ही मिट्टी की परछी।

आंगन में खड़े होकर नितीन ने सामने देखा, और आतंकसे वह एकदम विवर्ण हो उठा। उसके रोम-रोम सिहरकर अकड़-से रहे। परछीपर एक कंकाल-सार मृत स्त्री पड़ी हुई थी। वस्त्र के नामसे मैला-फटा कपड़ा उस पर पड़ा था, जो कि उसके शरीर को पूर्णतः ढाँक भी न सका था। मक्खियाँ भिनक रही थीं। खून जमकर पड़ा था, शायद वह मृता के मुख से निकला हो। हजारों चींटे उस पर जुटे थे और एक नग्न, अस्थि-सार शिशु मृता के स्तनों को चूस रहा था।

नितीन की चिर-परिचित खुशी भरी दुनियाँ में मानो एक विप्लव-सा मच गया। भूकम्प-सा आ गया। और उस भूकम्प से फटी हुई धरती से निकल आया—दुनियाँ का नग्न, कुत्सित रूप !

—तो इस कुरूप को—इस खुशी भरी दुनियाँ ने अबतक छिपाया कहाँ और कैसे रखा ?

विचार उठा नितीन के मन में और उसी पल उसकी चिर-परिचित खुशी सामने के दृश्य में पिसकर हाहाकार कर उठी। कागों का झुण्ड छप्पर पर कटु चीत्कार कर उठा। नितीन मानो सोते से जागा।

नितीन तब परछी पर पहुँचा। बच्चे को जब दोनों हाथों में समेटकर वह पीछे लौटा, तब उसे स्तंभित रह जाना पड़ा !

एक अकड़ी-सी मृत बालिका को दोनों हाथों पर धरे राधारमण दरवाजे की ओर लपका चला जा रहा था।

शीघ्र नितीन सहमा, और बच्चे को बगल में दबाए हुए राधा का पथ रोधकर खड़ा हो गया।

"यह क्या है?"

राधा ने लाल आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखा, फिर उन्मत्त-सा हँस पड़ा—"तुम आये हो कुसुम को ले जाने के लिये? आओ न, खून इसका सब मैंने चूस लिया है, अब हड्डियों को बैठकर तुम चबाते रहो। वह जो सामने पड़ी है। देखते नहीं?"

"और तुम इस बच्ची को लेकर कहाँ जा रहे हो?"

"भूँजने?"

"भूँजने?"

"हाँ—हाँ भूँजने कहते हो क्या? देखते नहीं- भूख के मारे मैं मरा जा रहा हूँ।"

"तो इसे लेकर क्या करोगे?"

"अरे भूँजकर खाऊँगा अन्धे!"

नितीन सिहर उठा—कौन-सी राक्षसी परिस्थिति आदमी को आदमी से राक्षस बना देती है—इस बात को विचारकर वह रोमाञ्चित होने लगा। राधा की पत्नी सामने मरी पड़ी है, बड़ी लड़की करुणा का शव लिये पिता भक्षण करने जा रहा है और मेरी गोद का यह निर्जीव बच्चा भी अभी-अभी मर जायगा!—ऐसे-ऐसे विचार नितीन के मन में उठे—और जब

उसका विचार बढ़ने को हुआ, तबतक राधारमण पैर बढ़ाकर आगे को चल दिया। लपककर नितीन ने उसे पकड़ लिया—"मुझे नहीं पहचानते राधा ?"

"यमदूत को और मैं न पहचानूँ ? इसे मैं ही खाऊँगा। छः दिन का भूखा हूँ। कृपा करो, मुझे छोड़ दो।"—वह विनय के साथ बोला।

और इसके बाद नितीन को लगने लगा—यदि और पलभर भी वह यहाँ ठहरेगा, तो राधा-सा वह भी पागल हो जायगा। या तो श्वास उसकी रुक जायगी। पूर्ण शक्ति से नितीन ने अपने को गिरने से रोका। कहा—"भूखे हो ? चलो मैं खाना देता हूँ। इसे मुझको दे दो।"

पिता के हाथ से उसी को सन्तान को नितीन ने जबरन छीन लिया। राधा जोर-जोर से चिल्लाने लगा! उस चीत्कार से प्रतिवासी वृद्ध दौड़ा आया। वहां का दृश्य देखकर शायद वह चकित हुआ, न हुआ, कहा उसने—"सब कुछ अन्त हो गया ? चलो ठीक है।"

"ठीक है ! आप कहते क्या हैं महाशय ?"—नितीन ने रूखे स्वर से कहा।

वृद्ध करुणा से हँसा। नितीन को लगा वह हँसी नहीं किन्तु रोदन का ही नग्न रूप है।

"आप अमीरों के लिए यहां का दृश्य अद्भुत और नया है, किन्तु हम गरीबों के लिए तो यह नित की पुरानी बात है।

मुझे खबर नहीं मिली, वरना सबेरे पहुँच जाता। राधा ने भी मुझसे कुछ नहीं कहा।"

"वह तो शायद पागल हो गया है।"

"चलो छुट्टी हुई। किन्तु महाशय, एक बच्चा और कहाँ है? वह मझला विमान?"

"क्या और भी बच्चे हैं? मैं तो दो ही को जानता था। राधा से पूछूँ, शायद कुछ कह सके।"

वृद्ध व्यक्ति ने राधा को हिलाया—"राधिकाप्रसाद, जरा चुप तो रहो।"

हठात् राधा चुप हो गया। फिर भय से कहने लगा—"तुम दूत अब मुझे लेने आये हो? छः दिन का भूखा हूँ। खा तो लेने दो।"

"विमान कहाँ है?" नितान ने पूछा।

"उसे ठिकाने लगा आया।"

"कहाँ रख आये हो उसे?"

"चाहे कहीं भी। तुम चाण्डालों से मतलब?" क्रोध से राधा चिल्ला उठा।

"कहाँ रखा है, कहो तो यार, मैं किसी से कहूँगा थोड़े ही।" उसकी पीठ थपथपाकर नितीन ने पूछा।

"नहीं बाबा, मैं बतलाने वाला नहीं। कम से कम मेरे विमान को तो चैन से रहने दो।" यों कहता हुआ सहसा राधा निकल भागा।

नितीन ने बेग खोलकर रुपये निकाले, उन्हीं रुपयों से वृद्धने दूसरे लोगों को अन्त्येष्टि क्रिया का सामान खरीदने बाजार भेज दिया।

प्रतिवासी स्त्री-पुरुषों की भीड़ लग गयी। उस जीवित बालक को उन्हीं में से एक उठाकर घर ले गया।

सबने मिलकर विमान को खोजा। किन्तु घर में वहीं भी उस तीन वर्ष के बालक का पता न चला और न राधारमण का ही।

प्रतिवासियों के साथ नितीन भी उन माता-पुत्री के शव के साथ श्मशान की ओर चल पड़ा।

श्मशान से जब नितीन घर लौटा, तब सन्ध्या का अँधेरा फैल चुका था।

नितीन के शरीर में असहनीय वेदना हो रही थी। उसके पैर सर्वप्रथम चले गये आलमारी के निकट, फिर घण्टे भर के भीतर उसने ह्विस्की की बोतल खाली कर डाली। उसके बाद खुशी से मस्ताना-सा झूमता हुआ पलंग पर लेट गया।

[ १७ ]

सिनेमा जाते समय उस भरी साँझ बेला में नितीन माधुरी के घर क्यों उतर पड़ा यह कह सकना सहज है।

राधा-परिवार की उस दुःखद मृत्यु का कारण नितीन ने इसी माधुरी लड़की को समझ लिया था। और जब पथ में उसका घर मिल गया, तब दो-चार कड़े-कड़े शब्द उसे सुनाने के लिए वह अधीर हुआ।

मिल गयी माधुरी उसे ड्राइङ्ग रूम में पियानो बजाती हुई।

उसे पियानो बजाते देखकर नितीन जल-सा उठा—"एक की हत्या कर खुशी मनाना—यही तुम लोगों की सभ्यता है। वाह माधुरी शाबास!"

माधुरी चौंकी, लौटकर उसे देखा, बोली—"बैठिये। किन्तु हत्या कैसी? किसको मैंने मारा?"

नितीन धड़ाम से चेयर पर बैठ गया—"नहीं कैसे? तुमने नहीं तो राधा-परिवार की किसने हत्या की?"

"क्या कह रहे हैं आप नितीन बाबू? राधा किसका नाम है? मैं तो पहचानती भी नहीं!"

"कैसे नहीं। उस दिन मेरे साथ वह नहीं आया था? अगर वैसा नीच बर्ताव उससे न करतीं, अगर उसे इस इसराज सिखलाने के लिए रख लेतीं, तो उसकी औरत-बच्चे इस तरह भूखों मरते ही क्यों? हत्यारिन!"

किन्तु क्रोध करने के बदले में जब माधुरी अनुतप्त स्वर से पूछ बैठी—"क्या सच?" तब न जाने क्यों नितीन का स्वर कुछ कोमल हो गया।

"सच नहीं—क्या झूठ? अपनी शौकीनी और घमण्ड के कारण तुम उसकी हत्या का कारण हुईं।"

"मैं?"

"हाँ जी तुम! अगर वह मैले कपड़े पहने था तो तुम्हारा क्या बिगाड़ता था? सिखलाता तो वह हाथ से न?

"मैं कैसे कहूँ नितीन बाबू, इस गरीबी को मैं कैसी शंका की दृष्टि से देखती हूँ?" एक ओर मुँह किए-किए धीरे-धीरे कह चली माधुरी—"नहीं जानते—आप नहीं जानते। मैं कैसे कहूँ कि इस मैले-कुचैलेपन से मैं कैसी घृणा करती हूँ। कैसे कहूँ कि यह मेरा इच्छाकृत अपराध नहीं है और इस दुःखद मृत्यु को सुनकर कैसी दुखी हो रही हूँ।"

"झूठ। अगर तुम्हारे मन में पीड़ा होती, तो ऐसा करतीं ही क्यों?"

"उस बात को? किन्तु आप समझ ही कैसे सकते हैं? दुनियाँ भी तो मेरी बात नहीं समझ सकी है न। और समझेगी भी कैसे? किन्तु मैं जानती हूँ कि इस गरीबी से मेरी आत्मा भयभीत होकर किस तरह कोसों दूर हटी रहा करती है। जिसे देखने के लिए मेरा जी सदा उतावला रहता है, उसे भी तो नहीं देख पाती न।"

"क्यों?" पूछा नितीन ने।

"इसी गरीबी के लिए। गरीबी से मैं डरती हूँ—उसी तरह डरती हूँ—जैसे कि हिंस्र जन्तु से आदमी डरता है। इसी गरीबी के भीतर मैं सब कुछ भी तो खो बैठी हूँ न। क्या करूँ मैं? नहीं जानते आप, कि इसी गरीबी के लिए उन्हें"—सहसा वह चुप हो रही।

"और इसी गरीबी के लिए उस बेचारे बापु को तुमने त्याग दिया न?"

"किन्तु मेरा मन उन्हें कहाँ त्याग सका ?" शायद अपने ही अनजान में कह दिया उसने।

"क्या प्रलाप बक रही हो माधुरी ? अगर तुम्हारा मन उसे चाहता, तो अमीर शुकदेव से शादी के लिए कभी राजी न होती। वरन् उस गरीब बासु से ही शादी कर लेती। समझीं—माधुरी अगर तुम उसे जी से चाहती होतीं, तुम्हारा प्रेम उस पर सच्चा होता तो गरीबी को ही तुम राज-सम्पद समझतीं। और इस तरह उस बेचारे की हत्या करने पर न तुलतीं।"

"जाओ तुम ! तुम नहीं समझ सकते, दुनियां नहीं समझ सकती।"

"चुप रहो माधुरी, धनके घमण्ड में फूली एकको हत्याकर बैठी हो, अब नम्बर है बासु का।"

"नहीं— समझ सकते, नहीं नहीं समझ सकते ! मैं कैसे कहूँ कि गरीबी से मैं कैसा डरती हूँ, कैसी घृणा करती हूँ। गरीबी को किसी भी तरह नहीं सह सकती।"

विस्मित नितीन चुप रह गया—कैसा है यह रहस्य ? विमूढ़ विस्मय से नितीन सोचने लगा—रहस्य ही तो है यह ! मन उसे चाहता है, फिर भी यह नारी उसे त्याग रही है। गरीबी से यह डरती है। और शायद कभी भी यह पति शुकदेव को प्यार न कर सकेगी। बासु के द्वार पर लुटा हुआ मन इसका पड़ा रहेगा उसी के दरवाजे और शरीर को यह बेच देगी धनवान के हाथ। और शायद तब भी यह नारी सभ्य समाज

में सती कहलाती रहेगी। कैसा है यह रहस्य ?

"राधा बाबू अब क्या कर रहे हैं ?" संयत स्वर से माधुरी ने पूछा।

"वह पागल हो गया है। उसे घर ले जाना चाहा। लेकिन किसी तरह भी वह न आया। और न मझले लड़के का पता चला।"

"याने ?"

तब नितीन ने उसे पूरी कथा कह सुनाई।

भीत कंठ से माधुरी चीत्कार कर उठी—"बस करो, बस करो, इस गरीबी की कथा मुझे मत सुनाओ। चुप रहो—चुप-चुप। मेरी श्वास रुकती है।"

"रुकती है तो रुकने दो। एक दिन सबकी रुकेगी। मरना एक दिन सबको है। फिर उससे डरना कैसा ?" रुद्ध कंठ से कहा नितीन ने।

"किन्तु उस अनिश्चित एक दिन के पीछे अभी से मैं अपनी आयु घटाऊँ क्यों ? ईश्वर की दी हुई जिन्दगी है, जिन्दगी को नष्ट करने का अधिकार आदमी को रहता भी तो नहीं न।"

नितीन उठकर खड़ा हो गया—"अच्छी बात है। तुम अपने डरपोक मन, अमीरी का घमण्ड और विलासिता लिए मजे में रहो।"

"बैठिए न। जलपान कर लीजिए।"

"यहाँ का पानी तक मैं नहीं छू सकता।"

"घर लौटकर माँ मुझे बकेंगी, कि इन्हें तूने जलपान क्यों नहीं कराया ?"

"मेरे बदले तुमही खा लेना।"

"मिठाई मैं नहीं खाती।"

"तो कह देना मैंने जलपान कर लिया है।"

"मैं झूठ नहीं बोलती।"

परिहास से नितीन कुछ कहने को हुआ और तभी वह चुप भी रह गया। उसे स्मरण हो आया, कि अभी-अभी इस नारी ने जो कुछ कहा है, प्रत्येक के लिए वैसा अकपट सब कुछ कह सकना असम्भव है।

"बस यही तो एक गुण है तुममें। और इसीलिए मेरे मन में थोड़ासा सम्मान अब भी तुम्हारे लिये बच रहा है। समझीं न माधुरी ?"

माधुरी चुप हो रही।

"माँ कहाँ गयीं ?"

"बाजार।"

"तुम्हारी शादी का सामान खरीदने गई होंगी।"

"जी हाँ।"

इसके इस 'हाँ' कहने से नितीन झुँझला पड़ा—"फिर तुम भी क्यों न चली गयीं ? खुशी की शादी और सामान तो तुम्हीं को खरीदना चाहिये था न।"

"इस बात को मैं मानती हूँ। क्योंकि उन सामानों के साथ

जिन्दगी काटना है मुझको, मेरी माँको नहीं। तो सामान मेरी रुचि अनुसार ही होना चाहिए।"

"तो गयीं क्यों नहीं?"

"पहले मैं समझी न थी। वरना शायद चली जाती।"

विरक्त विराग से मुँह फेरे नितीन निकल कर चल दिया।

नितीन ने भीड़ देखकर गाड़ी रोक ली। झाँककर देखा तो पाया—मृत राधा को पथ की धूलि में पड़ा और उसे घेरे हुई जनता का कलरव!

नितीन गाड़ी पर से उतर पड़ा। उसे देख भीड़ कुछ हटी। उसने राधा के मृत शरीर को कार पर रख लिया, फिर गाड़ी चल दी।

[ १८ ]

नितीन राधा का दाह कर घर न लौटा, सीधा पहुँचा राधा के प्रतिवासी के घर। वहां से राधा के शिशु पुत्र को लेकर घर पहुँचा। श्यामा तब व्यायामशाला में रहने लगी थी।

बैठकर नितीन ने ह्विस्की पी। फिर स्नान-भोजन कर बच्चे के साथ बाजार पहुँचा। और जब तक गाड़ी में जगह रही, तब तक वह शिशु के लिये सामान खरीदता गया। खिलौने, कपडे, लाजेन्स, हारलिक्स से लेकर, जूते, कपड़े, साबुन, पाउडर, मखमल का गद्दा आदि क्रयकर उसने गाड़ी में भर लिया, और जो न भरा गया उसे दुकान ही पर छोड़कर उसने ड्राइवर को आज्ञा दी—"चलो व्यायामशाला।"

रात्रि आठ बजते-बजते नितीन व्यायामशाला में पहुँच गया। जब दासी ने कहा, कि रात में शाला में पुरुष का प्रवेश निषेध है, तब उसने क्षिप्त की नाईं चिल्ला, धमकाकर, गाली गलौजकर असभ्यता की पराकाष्ठा कर दिखायी।

अन्त में जबरन् उसने अन्तःपुर में प्रवेश किया। इतना ही नहीं; ड्राइवर को सामान भीतर लाने की भी आज्ञा दी।

सामने की दालान में स्तूपाकृत वस्तु के सामने बच्चे को बैठाकर जब वह बांसुरी की खोज में जाने को हुआ, तब बाँसुरी स्त्रियों के साथ स्वयं पहुँच गयी।

"यह कैसी जबरदस्ती, कैसा अत्याचार है नितीन बाबू ?" विरक्ति से बांसुरी भौंहें सिकुड़ रही थीं।

उस दिन नाना कारण से नितीन रुष्ट, विमर्ष था—उस पर शाला में पहुँचकर दासी से वाक-वितण्डाकर उसका स्वभाव और भी रूखा हो उठा था। और उस पर बाँसुरी के उस प्रश्नने उसे असभ्यता का चूड़ान्त करने पर बाध्य कर दिया—"अत्याचार मैं कर रहा हूँ या तुम्हारी नौकरानी ? घण्टों मुझे बाहर रोक कर बहस करती रही।"

"उसने ठीक किया।"

"ठीक किया ? तुम कहती हो उसने ठीक किया ?"

"बिलकुल ठीक। आपको याद रखना चाहिये, कि यह स्त्रियों की शाला है। रात में यहाँ मर्द का आना निषेध है। और यह भी याद रखना चाहिये कि यह कोई शराबखाना नहीं

है। भले घर की स्त्रियां यहाँ रहती हैं, गुण्डापन दिखाने को यह जगह नहीं है।"

क्रोध से नितीन चिल्ला पड़ा—"बस—बस करो इन मूर्ख औरतों के सामने तुम देवी बनी पुजती रहा करो। मेरे सामने नहीं। शराबखाना नहीं? लेकिन इस शराबी ने जब उस दिन अपना—प्रेम तुम्हें जतलाया था, तब उसके साथ उसी के घर रहते आपत्ति नहीं हुई थी? और ऐसी तुम, फिर भी अपने को सती कहलाने के लिए मर रही हो? यह निरा कौतुक नहीं तो क्या है? गुण्डेपन की जगह यह नहीं है? लेकिन बंशी जिसे दिल में तुम गुण्डा समझती हो, उसी के घर रात के बाद रात तुमने बिताई ही कैसे? क्या उस वक्त में कोई दूसरा बन गया था? और वंशी, इसी गुण्डे ने जब तुम्हें बाँहों में समेट लिया था, तब?—कहो न, चुप क्यों हो? क्या मैं झूठ कह रहा हूँ?"

बाँसुरी स्तब्ध, विमूढ़-सी खड़ी-खड़ी काँपने लगी।

"मेरी साथिनों को सिर्फ गुण्डेपन की बात न सुनाकर वे बातें भी सुना दो न। जब कि आज तुम सब कुछ सुना रहे हो, तब उन बातों को भी तुम्हीं सुना दो।"

बाँसुरी के उस स्वर को सुनकर नितीन चौंका! उसे लगा हाँड़ी के भीतर से कोई बोल रहा है। उसने आँख उठाई, बाँसुरी के उस शव की नाईं विवर्ण मुख को देखकर नितीन सिहर उठा। और कदाचित् अपने आचरण की कदर्थता को

समझ सका, एवं समझने के साथ ही साथ एक अज्ञात आशंका से वह वाक्‌हीन हो रहा।

"कहो। अब छोड़ ही किसके लिये रहे हो? और भी जो बाकी बचा हो उसे कह डालो, कर डालो। मैं सब कुछ सुनने के लिये, सहने के लिये खड़ी हूँ और खड़ी ही रहूँगी।"

नितीन ने देखा शत उत्सुक और कौतुकपूर्ण नेत्र बाँसुरी और उसके मुखपर न्यस्त हैं।

एक अपराधी की भाँति नितीन ने मस्तक नतकर लिया।

बाँसुरी बोली—वैसे ही अनुत्तेजित स्वर से कहने लगी वह—"कहो—कहो—चुप क्यों हो? दुनियाँ में तुम्हारा और मेरा परिचय जिस लिये हुआ था—उसका भी अन्त कर डालो। अपमान से विद्धकर मेरे नारीत्व को रौंद चुके हो तुम, अब उसे भी दुनियाँ के सामने अप्रकाशित क्यों रखो? और मैं पूछती हूँ—आखिर तुम मेरे पास चाहते ही क्या हो?"

सहसा नितीन बद्ध अंजलि से खड़ा हो गया—"माफ करो बंशी, चाहता सिर्फ इतना हूँ कि इस अभागे बच्चे को माता के स्नेह से पाल लो।"

"बस इतना ही? या और भी कुछ बाकी है? किन्तु मैं चाहती हूँ कि पल-पल में मुझे अपमानित न कर आज ही सब कुछ अन्त क्यों न कर डालो?"

"मेरे बहुत कुछ को तुमने माफ किया है। लो इसे भी उसी तरह से सह लो, माफ कर दो।"

"परन्तु यह व्यायामशाला है, नाट्य-गृह नहीं। जाओ—आज से आगे कभी मेरे सामने न आना। जाओ, यही मेरा अन्तिम निर्णय है।"

नितीन को लौटते देखकर बाँसुरी पुनः बोली—"इस बच्चे को यहाँ छोड़े जा रहे हैं ?"

"इसकी जगह कहीं पर नहीं दिखी, तो तुम्हारे पास ले आया। फिर ले जाना कैसा ? तुम्हारे लिए ही जो इसे लाया हूँ।"

"मेरे लिए ?"—वह मुँह फेरकर बोली—"तो इसे रखकर जा सकते हैं।"

नितीन चलने को हुआ।

"और श्यामा ?" पुकारकर कहा बाँसुरी ने।

"उसे लेता जाऊँ ? लेकिन वह तुम्हारे बिना जी भी तो नहीं सकती न !"

"नहीं, लेकर जाइये।"

"विश्वास करो, बंशी। और किसी दिन भी नितीन तुम्हारे सामने न आवेगा। कभी-कभी श्यामा को मेरे पास भेज दिया करो। बस।"

इस कथन के बाद बाँसुरी ऐसी सहसा वहाँ से हट गयी—जिसे देखकर केवल नितीन ही नहीं; वरन् वहाँ के उपस्थित सब विस्मय से निर्वाक् हो रहे।

नितीन ने उसके गमन-पथ की ओर देखा, फिर दीर्घ श्वास हृदय में दबाकर चल पड़ा।

[ १६ ]

उस दिन नितीन माधुरी के निमन्त्रण में आकर विस्मय-विमूढ़ हो रहा। गृह-प्राङ्गण अभ्यागत, अतिथियों से भरा हुआ था। दरवाजे पर वर-यात्री सहित वर शुकदेव उपस्थित था, और वासुदेव एक कर्तव्य-निष्ठ की भाँति वर की अभ्यर्थना में जुटा था। उस मुख को देखकर यह कह सकना कठिन ही नहीं; वरन् एक प्रकार से असम्भव-सा था कि, उस हृदय में आनन्द का पवन बह रहा है या दुःख, व्यथा की आँधी। देख-सुनकर नितीन एक तरफ चुपचाप बैठ गया।

विवाह निर्विघ्न हो गया। घुटनों तक धोती उठाये और कमर में गमछा बाँधे-बाँधे वासुदेव ने दौड़-दौड़ कर सब कामों में हाथ बटाया। यह सब कुछ नितीन देख रहा था। और मित्र के ऐसे बर्ताव से वह विस्मित एवं विरक्त हो रहा था।

परन्तु अधिक क्षण नितीन बैठ न सका, असहिष्णु, अधीर और क्रुद्ध रोष से वह उठ खड़ा हुआ, फिर बाहर की ओर चल पड़ा। गेट पर पहुँचा नितीन, दौड़ता, हाँफता वासुदेव अन्तःपुर से निकल आया—"ओ नितीन, ठहरो-ठहरो।"

"क्यों?" वक्र नेत्र से उसने पूछा।

"खाये बिना जाना कैसा? चलो पत्तल पड़ गई है। खाओ।"

"तुम ही बैठकर खाओ। मुझे तो इस परिवार की सूरत से घृणा है। और तुम्हारा आचरण तो मुझे अचम्भे में डाल रहा है।"

"क्यों भला ?" खिन्न हास्य-रेखाएँ वासुदेव के अधरोष्ठ में आकर लिपट-सी रहीं।

"क्यों ? और ऊपर से पूछते हो क्यों ? अगर तुम लोगों के कहे अनुसार प्रेम का महत्व मान भी लिया जावे, तो उसी प्रेम को यहाँ पैरों तले कुचला जाते हुए क्यों पा रहा हूँ ?"

"किस तरह ?"

"तुम्हारी माधुरी और तुम इसके खासे दृष्टान्त बने हुए हो। वह कहती है उसका मन तुम्हें चाहता है, और वही उसका मन गरीबी से डरता है। जाने दो, उस चाण्डालिनी की बातों को। इधर तुम्हारा कहना है—उसके बिना दुनियाँ अँधेरी है, और वही तुम अपने हाथों उसे पराया कर रहे हो! और खुशी-खुशी।"

"उसे—उस माधुरी लड़की को भी तो तुम समझ नहीं पाये हो न मितीन अपने हृदय-रन्ध्रों को जो नारी असंकोच दुनियाँ के सामने खोल सकती है, सोचो तो सही—उसका मन कितना ऊँचा, उदार है। यदि वह एक को चाहती हुई दूसरे से शादी करना पाप समझती, तो ऐसा करती ही क्यों ? और यदि वह एक को चाहती हुई दूसरे से शादी करना पाप समझती तो दुनियाँ से उस बात को छिपा न लेती ? किन्तु नहीं, उसने

वैसा कुछ न किया। वरन् साफ-साफ सब कुछ कह दिया। गरीबी से वह डरती है, सो उसका अपराध नहीं है नितीन, वह पली ही जो उस तरह से है। मैं उसे श्रद्धा करता हूँ।"

"और मैं घृणा।"

"मतभेद का होना स्वाभाविक है। मेरे विचार से वह निर्दोष है। जिस परिस्थिति में वह पली है— उसे भी तो देखो। उसने अपना सुख नहीं देखा। देखा भविष्य को। नहीं कैसे? अपने सुख के लिए यदि वह मुझसे शादी कर लेती, तो हमारी सन्तान को जो उसका दुःखद परिणाम भोगना पड़ता नितीन!! बेकार की संतान बेकार के सिवाय और क्या हो सकती थी?"

"ऐसा सोच-विचार कर तब प्रेम करो? भविष्य को भविष्य के लिए छोड़ दो। वर्त्तमान को सुख-चैन से क्यों न अपनाओ? नहीं यार, तुम्हारी दुनियाँ से मेरी यह रंगीली, फुर्तीली दुनियाँ भली है। यहाँ शादी-ब्याह की झंझट नहीं। प्रेम को देवी-देवता की तरह पूजने की जरूरत नहीं; पैर फूँक-फूँककर चलने की जरूरत नहीं। कुछ नहीं; है सिर्फ खुशी और खुशी।"

"अच्छी बात है। अब भोजन तो कर लो।"

"इस घर में? छिः। यहाँ की हवा से मेरा श्वास रुँधा जा रहा है।" और इसके बाद उत्तर-प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही नितीन कार पर बैठ गया।

[ २० ]

हेमन्त की नवोढ़ा संध्या हरी साड़ी के आँचल में नीद-कुसुम का हार लिए पृथ्वी-ललाट पर खुशी का टिलक आँक रही

थी और एक हरी खुशी कुमकुम बिन्दी-सी चू रही थी विश्व-संसार में।

उस संध्या बेला में चातक के कण्ठ में रोदन नहीं, था, था गान, पपीहरा के पिपासार्त्त चीत्कार में थी—मिलने की खुशी और सन्ध्या के हाथों में थी—अँगूर-रस की प्याली।

नितीन—वह इन्द्र-सा सुन्दर, वेश्या-सा विलासी युवक नितीन के घर पार्टी थी—सजीव खुशी।

हाँ—जो यद्यपि नित की भाँति नितीन एम० ए० में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था, और सदा की भाँति मित्रगण कई चार पार्टी—डिनर में हाथ बँटा चुके थे, किन्तु फिर भी उस वृहत पार्टी की प्रतीक्षा रह ही गयी थी। सो उस दिन एक प्रकार अनिच्छा रहते हुए भी नितीन को इस बड़ी-सी टी-पार्टी का आयोजन करना पड़ा था।

उस पार्टी में यूनिवर्सिटी के आधे से अधिक छात्र-छात्रियाँ नितीन के घर उपस्थित थे।

जेनरल ही तो पार्टी थी वह। उस दिन गार्डेन में जब नितीन टहल रहा था, तब मित्रों ने उसे पकड़ लिया था, एक बोला था—'नितीन, आजकल तुम बदल गये हो। न तो पहले-सा हँसते-बोलते हो, न पार्टी—न कुछ, पहले जैसे खुशी में भी नहीं डूबे रहते हो।'

उत्तर में उसने कहा था—"चलो, यह सब तुम लोगों की मनगढ़न्त बातें हैं। मैं भला क्यों बदलने चला।"

"मनगढ़न्त ? ऊपर से ढाँकते हो। पहले तुम स्वयं खुशी में मस्त रहते थे, उपरान्त हम सबको मस्त रखते थे। कोई रोता भी आदमी हो, तो तुम उसे हँसा देते थे। कहो महेश झूठ है ?"

"सच है सच। जिसने नितीन को बदलकर हम जैसा दुनियाँ ही का एक जीव बना दिया है। मैं कहता हूँ और जोर के साथ कहता हूँ, कि लव को न मानने वाला नितीन किसी रूप-परी के लव में पड़ गया है। वरना ऐसा परिवर्तन होता कैसे ? कहो नितीन सच है न ? बोलते क्यों नहीं ?"

और नितीन ने क्षीण कंठ से तब प्रतिवाद करना चाहा, किन्तु स्वर उसका कंठ ही में मूर्छित हो गया था, कह पाया था केवल—"चलो यार, बातें न बनाओ।"

और इसके बाद धक्का दे-देकर नितीन ने अपने सुप्त मन को जगाया था, फिर चिर-परिचित आमोद-प्रमोद की दुनियाँ में खींच लाना चाहा था। कदाचित् सफल हुआ हो, या न हुआ हो। किन्तु इसके बाद नितीन के साथियों ने अपने बीच उसे पाया था—उसी पुरातन नितीन ही के रूप में—आमोद-प्रमोद में मस्त, मतवाला-सा।

पान-भोजन, गान-गल्प के बाद प्रायः आठ बजे रात्रि में निमन्त्रित विदा हुए और तब आनन्द में ओत-प्रोत नितीन ने ह्विस्की का अवशिष्ट बोतल भी शेष किया, फिर मोटर में बैठकर वेश्यालय की ओर चल दिया।

प्यारी बाई का घर उसने उसी दिन से जाना छोड़ दिया

था, जिस दिन की राधा की मृत्यु हुई। क्यों? सो वह नहीं जानता, यदि जानता तो केवल इतना ही, कि उसके घर जाते उसे न जाने कैसा खराब लगता था।

नितीन जब उस वृहत् अट्टालिका में पहुँचा, तब उसके प्रत्येक कक्ष के मुक्त वातायनसे बिजली का प्रकाश फैल रहा था। और हास्य-संगीत का कलरव राज-पथ तक फैल रहा था।

नितीन सीढ़ियों को तय करता द्वितल में पहुँचा। सामने की दालान में चौकी पर बैठी वृद्धा नारी—हाव-भाव विलास, शृङ्गार–में रमी-सी पुकार उठी—"आइये बाबू साब।"

वृद्धा सम्भ्रम से उठी और नितीन को साथ लिए-लिए एक सज्जित कमरे में प्रवेश किया। कमरे में काश्मीरी गलीचा बिछा हुआ था, कई मोटे तकिए, दो फूलदानों में फूल के तोड़े, एक ओर लकड़ी की कीमती पलंग पर साफ-सुथरा बिछौना। तिपाई पर ट्रे में रखे कई ग्लास, ह्विस्की का बोतल, सोडा। इत्रदान से इत्र की सुगन्ध फैल रही थी। पान का डब्बा भरा रखा था। एक पीकदान, दीवालों पर उलंग नारी-चित्र। बस, कमरे में था इतना ही।

नितीनने कमरेके भीतर जूते खोले फिर गलीचेपर अधलेटा-सा पड़ रहा। बूढ़ी भी हँसती हुई बैठ गयी।

"कहो, आज का कैसा इन्जाम है?" नितीन ने पूछा।

"आपकी इच्छानुसार ही रोज इन्तजाम किया करती हूँ। वह तो मैं ही हूँ—जो सरग में सीढ़ी लगाती हूँ। नहीं तो रोज

नयी-नयी की आमदनी—कोई हँसी-खेल थोड़े ही है।"

"इसे मैं मानता हूँ, और इसी से मुँह-माँगा इनाम दे देता हूँ। उसे भेज दो।"

वह उठकर खड़ी हो गयी—"लेकिन बाबू साहब, ज़रा गँवारिन है, कुछ सोच-विचारकर बातें करना। और हाँ, है तो परी ही, देखते ही तबियत खुश हो जायगी। उसे भेजती हूँ। और कुछ?"

"चाय भिजवा देना।"

स्त्री चली गयी। थोड़ी देर में नौकरानी एक प्लेट में किमा के बड़े, दालमोट, तले हुए चने और फुलकियाँ लेकर पहुँची। प्लेटों को उसने नितीन के सामने रख दिया।

नितीन ने एक रुपया फेंक दिया—"ताजी मिठाई और सुराही भर पानी लाओ।"

दासी चली गई। कुछ देर के बाद पानी और मिठाई रख गयी।

वृद्धा एक युवती नारी को लेकर उपस्थित हुई। नितीन ने देखा उस स्त्री के अनुपम रूप-राशि में रोदन मानो भरा पड़ा है। विस्मित नितीन ने उसे देखा—फिर देखा।

वृद्धा स्त्री से कहने लगी—"यह अमीर आदमी हैं, समझी? शर्माना नहीं। इन्हें अगर तू खुश कर लेगी, तो रोटी के लिये कभी तरसना न पड़ेगा, समझी?" वृद्धा निकलकर चल दी।

उसे अपनी ओर खींचते हुए नितीन ने कहा—"आज रात-

भर के लिये तुम मेरी साथिन हो, चलो आओ। यह उदासी कैसी ? आज तो खुशी-ही-खुशी है न।"

वह नितीन के निकट बैठी।

नितीन ने दोनों हाथों से समेटकर उसका मुख निकटतर किया और निविष्ट चित्त से उस परम सुन्दर मुख को निरीक्षण करने लगा।

देखा उसने और देखता ही रह गया। देखते-देखते सहसा नितीन सिहर उठा। उसे लगा विश्व का रोदन उन नेत्रों में भरा हुआ है और उस रोदन को लोक-नेत्र से अगोचर रखने के लिये यह नारी अपने-आप से युद्ध करते-करते क्षत-विक्षत हो रही है।

विचारा नितीन ने विस्मय के साथ—यदि इस नारी के मन में ऐसा विकराल रोदन का महासमुद्र भरा हुआ है, तो यह इस आमोद में बहने के लिये आयी ही क्यों ? और मन में आँसू भरकर मुँह में यह हँसी का स्वाँग रचना ही कैसा ? कैसा यह रहस्य है ?

"क्यों रानी, आँसू को छिपाकर हँसने की यह व्यर्थ चेष्टा कैसी ?" नितीन ने पूछा।

"नहीं तो।"

"नहीं कैसे ?"

"आप नाराज क्यों हो रहे हैं ? मैं रोती कहाँ हूँ ? बूढ़ी अम्मा कहती थीं—अगर आपको मैं तुष्ट कर लूँगी तो मेरे बच्चे भूखों न मरेंगे।"

नितीन के शिथिल हाथ से उसका मुँह छूट गया।

"तुम्हारे बच्चे हैं?"

"हाँ—बाबूजी।"

"कितने बच्चे हैं?"

"तीन। गोद का बच्चा बीमार है।"

"क्या बीमारी है?"

"नहीं जानती। जब मैं घर से चली, तब उसने आँखें भी न खोली थीं।"

"ऐसा!"

"रात अभी बहुत बाकी है न?" घबराकर उसने वातायन-की ओर ताका।

"बहुत बाकी है। क्यों—तुम्हें यह रात अच्छी नहीं लगती क्या?"

"अच्छी?" वह मौन रही।

"कहो न?"

'मेरे बच्चे भूखे मर रहे हैं। गोद के बच्चे ने आँखें भी न खोलीं। वे मेरी बाट जोह रहे होंगे। उनसे कह आयी थी—खाना लेने जा रही हूँ।"

"फिर यहाँ क्यों आई?"

"मैं भूल गयी थी बाबू जी, आजकी रात बड़ी सुहावनी है। आप बड़े अच्छे आदमी हैं बाबू जी।"

निबिड़ विस्मय से नितीन उसे देखता हुआ कहने लगा—

"जरा साफ तो कहो, बात क्या है? बच्चों को भूखा छोड़कर तुम क्यों चली आयीं ?"

"उनके लिये खाना लेने।"

"तो खाना न लेकर यहाँ क्यों आई ?"

"आप ही देंगे उनके लिए भोजन। सबेरे घर लौटकर उन्हें भर-पेट खिलाऊँगी। कम-से-कम एक दिन भी तो वह भर-पेट भोजन करेंगे। मैं बैठी उनका खाना देखूँगी।"

"रोज भोजन क्यों नहीं बनातीं ?" निलीन का विस्मय दुर्निवार हो रहा था।

"बनाती कैसे ? घर में अन्न का एक दाना भी नहीं रहता। जब कभी वह पैसे लाते हैं, तो वह बस नहीं होता, मजूरी रोज नहीं लगती। कभी घर में पैसे भी नहीं लाते। सीधे कलारी चले जाते हैं, शराब-पीकर नाली में पड़े रहते हैं।"

"तुम्हारा पति भी है ?"

"है न।"

"कहाँ रहती हो ?"

"नारियल के उस पार, मजदूर मुहल्ले में।"

"यहाँ क्यों आईं ?

"वह जेल गये हैं। अब भीख माँग लाती हूँ कभी। कभी मजूरी लगी तो चली जाती हूँ। उस दिन मैं भीख मांगने यहीं आयी थी, सो अम्माजी निकलीं। बड़ी अच्छी हैं। सो उन्हीं बूढ़ी अम्माने कहा—भीख से कभी गुजर हुई ? मैं तेरे बच्चों के

लिये पेट भरने का इन्तजाम किये देती हूँ। रात को बाबू के पास रह, अगर उन्हें खुश कर लेगी, तो तुझे रुपये मिलेंगे। उन्होंने तो बहुत-सी बातें समझाईं, सिखाईं।"

"और कभी आई थीं यहाँ?"

"हाँ, उस हफ्ते में आई थी। वह बाबूजी भी आपकी तरह अच्छे थे। मैं घर में आई तो वह शराब के नशे में झूम रहे थे। मुझ से कहा पैर दबाने को। मैं रातभर उनका पैर दाबती रही। वह सो गये थे। सबेरे जब उठे, तो मुझे एक रुपया देकर चले गये।"

"नितीन का जी जाने कैसा उदास हो गया। "भूखी हो? तुम्हारे लिये मैंने मिठाई मंगा रखी है, लो खा लो।" धीरे बोला नितीन।

नितीन ने मिठाई की टोकनी उनके सामने रख दी। वह एक रसगुल्ला लेकर मुँह के निकट ले गयी, और झर-झरकर उसके आँसू रसगुल्ले पर झर पड़े! वह सिसक-सिसककर रोने लगी। उस आँसू के सामने नितीन एक मूर्ति की भाँति बैठा रह गया।

"रोती क्यों हो?" देर के बाद नितीन ने पूछा।

नारी सहसा ऐसी सहमी, कि उसे देखकर नितीन को चकित रह जाना पड़ा।

शीघ्रता से दूसरे हाथ से उसने आँखें पोंछी। हँसने का प्रयास

करती हुई बोली—"रोती कहाँ हूँ, वह तो तिनका आँख में पड़ गया था।"

और इसके बाद उसने दोनों हाथों से भोजन करना आरम्भ कर दिया—इस तरह जैसे रोगी तिक्त औषधिको पी जाता है।

नितीन ने उसका हाथ पकड़ लिया—"बस करो। जिस लिये भी हो—मैं देख रहा हूँ, मिठाई गले से उतरती नहीं है। भूख नहीं है क्या?"

"मेरे बच्चे तीन दिन के भूखे हैं, और मैं—मैं—" नितीन उठकर खड़ा हो गया। रोना भूलकर नारी ने उसके पैर पकड़ लिये—"आप गुस्सा न हों। मैं अब न रोऊँगी। यदि मैं आपको खुशकर लूँगी तो मेरे बच्चे भरपेट भोजन पायेंगे। और तभी वह जी सकेंगे।

परम आदर से नितीन ने उसे उठाया—'तुमसे मैं खुश हूँ। लो यह रुपये लेती जाओ। मैं तुम्हें कल ठिकाने पहुँचा आऊँगा।"

असीम विस्मय से स्त्री ने उन नोटों को देखा फिर संदिग्ध भाव से पूछा—"यह सब रुपये आप मुझे दे रहे हैं?"

"हाँ, तुम्हीं को।"

"और फिर लौटाकर तो न मांगेंगे?"

"नहीं नाम तो कहती जाओ।"

"मेरा नाम गुलाबी है !"—चलते से रुकी, निराश स्वर से बोली—"अभी रात बाकी है न ?"

"फिर इससे क्या ?"

"सबेरा हुये बिना रुपये कैसे लूँ ?"

"मैं दे रहा हूँ, तुम खुशी से रुपये लेकर चली जाओ।"

स्त्री आँसू भरे नेत्रों से निकलकर चल दी।

[ २१ ]

कई दिन ज्वर भोगने के बाद उस शनिवार को सन्ध्या समय नितीन उठा तो, पैदल टहलता हुआ एक ओर चल पड़ा। पथ में परिचित किसी से उसकी भेंट नहीं हुई।

चलते-चलते सहसा नितीन को उस स्त्री की बात याद आ गई। प्रायः वर्ष बीत रहा होगा, नहीं तो छः सात माह अवश्य बीते होंगे उससे मिले। उसने अपना नाम गुलाबी बतलाया था न ? और घर नारियल के उस पार। बस यही कहा था न ? यों सोचता-विचारता नितीन पहुँच गया गुलाबी के झोपड़े के सामने।

तब सन्ध्या का अँधियारा भली-भाँति फैल नहीं पाया था। झोपड़ी थी फूस की, एक ओर फूस का दरवाजा रखा हुआ था। शायद रात में उसका उपयोग हुआ करता था।

नितीन जब पहुँचा, तब कई व्यक्ति उसी द्वारपर खड़े 'माधो' 'माधो' कहकर चिल्ला रहे थे। नितीन ने झाँककर देखा। झोपड़ी के भीतर जो कुछ देखा, उसके बाद वहाँ खड़ा रहना उसके लिये असम्भव हो गया।

गुलाबो को एक व्यक्ति प्रहार से जर्जरित कर रहा था, और वह मुट्ठी में कुछ दबाए हुए औंधी पड़ी उस प्रहार को सहनकर रही थी, और चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी—"पन्द्रह दिन के बाद आज पाँच आना पैसे मजूरी के लाए हो ? सो शराब पीने के लिए मैं नहीं देती, होरा बिना खाये चल बसा, अब परमा और मोती अन्न के बिना मर रहे हैं। चाहे तू मुझे मार डाल पैसे न दूँगी। मेरे बच्चे दो दिन से भूखे हैं।"

लपककर नितीन ने उस व्यक्ति को पकड़ लिया।

नितीन को घूरता हुआ वह व्यक्ति बोला—"हमारे बीच में बोलनेवाले तुम कौन होते हो ?"

"इसे क्यों मार रहे हो ?"

"यह पैसे क्यों नहीं देती ?"

"कह रही है न, कि बच्चे भूखे मर रहे हैं, तुम्हें शर्म नहीं आती ? बच्चों को भूखा रखकर उन्हीं पैसों से शराब पिओगे ? धिक्कार है ऐसे जीवन पर।"

व्यक्ति जरा शर्माया-सा, गुलाबो तब तक उठकर बैठ गयी थी, बोली—"बैठिये बाबू जी, आपकी बाट मैं कबसे जोह रही हूँ। साल भर के बाद आप आये। यह चण्डाल जब से जेल से निकला है तब से और भी आफत मचाये रहता है। शराब के सिवा इसे कुछ नहीं दीखता, कमाई के पैसे कलारी में जाते हैं। मजूरी कर मैं कुछ लाई हूँ, सो भी माँग रहा है।"

"तो मैं शराब भी न पीऊँ ? रोज कौन पैसे मिलते हैं, घर में रोज भूखों मरने के सिवा, धरा क्या है ? वह पगली

रात-दिन लड़ती रहती है। बच्चे रोज मरते रहते हैं। अगर कभी शराब भी न पीऊँ, तो जिऊँ कैसे ?"

नितीन स्तब्ध रह गया—यही इन लोगों के जीवित रहने का उद्देश्य है। और यही है इनकी दुनियाँ! उसे लगा मानो सच ही कह रहा है, एक अपढ़ मजदूर के लिये; जिसे नितही उपवास करना हो, जिसके लिये रोज की मजदूरी भी न हो, घर में जिसके सदा हाहाकार मचा हो, तो ऐसे एक के जीवित रहने के लिये कभी जरा-सा आमोद; जरा-सी मस्ती भी तो चाहिये न। फिर यदि वह शराब पीकर खुशी मनाना चाहे, मस्त होना चाहे, निर्जीव नसों में स्फूर्ति लाना चाहे, तो इसमें अन्याय ही कौन-सा है? मनुष्य का स्वभाव आनन्द-प्रिय होना स्वाभाविक है।

परन्तु फिर भी नितीन ने पूछा—"तुम इन बच्चों के पिता हो न ? और इसके पति ?"

"फिर इससे क्या ? पिता और पति होना अगर अपराध है, तो इसके लिये जिम्मेदार मैं नहीं हूँ।

"तुम नहीं—तो कौन है ?"

"नहीं—मैं नहीं हूँ। दुनियाँ का आदमी मैं—उसी दुनियाँ में हिला-मिला रहना चाहता था, लेकिन दुनियाँ अगर मुझे भूखों पीस-पीसकर मारना चाहे, तो करही क्या सकता हूँ ? किन-किनकी सुध लेता फिरूँ ? और स्वयं मुझे सुख ही कौन-सा है ? अगर मैं ही मर गया तो यहाँ पूछनेवाला कौन है ? और अगर मैं मर गया, तो इन्हें देखेगा भी कौन ? तो मेरे जीते

रहने के लिये जो कुछ जरूरत है उसे मैं क्यों न करूँ ? मैं पिता हूँ,—पति हूँ सो ठीक है, परन्तु उसके साथ ही साथ मैं—मैं भी तो हूँ न, उस मैं को जिन्दा रहने के लिये भी तो मुझे कभी मस्ती की जरूरत पड़ जाती है बाबू।"

"मस्ती ?"

"हाँ बाबू जी, मस्ती—मस्ती। ताड़ीखाने में जाकर मेरी मस्ती, मेरी ताकत फिर हफ्ते भर के लिये लौट आती है। उससे कहो—मुझे पैसे दे दे। हलका, नन्हा, सब मेरा रास्ता देख रहे हैं।"

"वे सब भी क्या तुम्हारी तरह औरत से पैसे छीनकर शराब पीने जा रहे हैं ?"

"हाँ। इससे पैसे दिलादो बाबूजी।"

"लो।" नितीन ने बेग खोलकर एक रुपया उसकी ओर फेंक दिया।

माघो ने विस्मय-पुलक से लपककर गद्गद् स्वर से कहने लगा—"परमात्मा तुम्हारा भला करे। बहुत दिन के बाद जी भरकर शराब पीऊँगा।"

माघो झोपड़े से निकलकर साथियों के साथ नाचता, कूदता चल दिया।

"एक रुपया आपने उसे दे दिया बाबूजी, शराब पीकर वह रुपया वह बर्बाद कर डालेगा। उस रुपये से मेरा कई दिन का खर्च चल जाता। बच्चे भर पेट खाते।"

"इनके लिये मैं रुपये लेकर आया हूँ गुलाबो। लो, जाकर महीने भर का सामान खरीद लाओ।" दस-दस के दो नोट निकालकर नितोन ने गुलाबी की ओर हाथ बढ़ाया।

नासमझ की भाँति गुलाबी उसका मुँह निहारती रह गयी। नोट लेने की चेष्टामात्र उसने न की।

"लो न गुलाबी।"

"मुझे दे रहे हैं आप?"

"हां,—इन बच्चों के लिए।"

"ईश्वर आपका भला करे।" आँसू भरे नेत्र से उसने रुपये लिए। फिर जरा सन्दिग्ध स्वर से बोली—"रात को तो मैं रहती नहीं हूँ, फिर भी दे रहे हैं आप?"

"रात में रहने की जरूरत नहीं है गुलाबी। और हर महीने तुम मेरे घर पर जाकर इन बच्चों के लिए रुपये ले आया करो। तुम अब बूढ़ी मा के घर जाती हो क्या? नहीं? अच्छी बात है।"

अधिक आनन्द से गुलाबी रो पड़ी। उसके बाद उठी और टूटी-सी चारपाई घसीटकर लाई। नितोन उसपर बैठ गया।

"आपके पास क्या फालतू रुपये बहुत हैं?"

"बहुत हैं गुलाब!"

"तभी तो—तभी तो—"। सिर हिलाती हुई वह कहने लगी।

"क्या कह रही हो?" नितोन हँस पड़ा।

"यही कि फालतू हैं, तभी इस तरह से आप रुपये लुटाया करते हैं।"

लुटाता कहाँ हूँ गुलाबी ? इन बच्चों के जीने के लिये भी तो जरूरत है न रुपयों की।"

"सो तो है ही। हर महीने दोगे बाबू?"

"हाँ हाँ, हर महीने।"

"तुम देवता हो।" सहसा वह कह उठी—"आदमी नहीं देवता—देवता!"

देवता—देवत्व? नितीन अवाक् रह गया। यह कहती क्या है? दुनियां ने उपाधि दी है उसे लम्पट, शराबी की, और उसी दुनियाँ का जीव—यह आज—कह क्या रही है? अभी पलभर पहले जो लम्पट था—वही दूसरे एक पल में बन गया देवता! परन्तु अब वह अपने उस लम्पटता के आधार पर इस देवत्व को संभालकर रखे भी तो कैसे रखे?

पल में वह विस्मय से विचार चला—कौन जानता था कि उस लम्पट के भीतर भी एक ऐसा महान देवता छिपकर बैठा हुआ है। और यही तो एक पहेली-सी है न कि चरित्रहीन, शराबी नितीन एक छोटे से पल में रामकृष्ण परमहंस, बुद्ध आदि जैसा अवतार ही बन बैठेगा। और यह भी कौन कह सकता है कि किसी एक और पल में उसी देवत्व के आधार पर पशुत्व फिर न जाग उठेगा?

परम सन्तोष से नितीन ने विचारा—जागे भी तो इससे क्या? पलभर के लिए वह देवता का अवतार है, इतना तो सही ही है न? और यह शुभ पल भी तो उसके जीवन में परम लाभ स्वरूप रहेगा न।

"बाबूजी।"

तन्द्राच्छन्न नितीन चौंका—"हाँ गुलाबी!"

"भजिया बनाऊँ?"

"नहीं मुझे बुखार आता है न। अच्छा तो चलूँ न। तुम मेरा घर पहचान लोगी?"

"नहीं बाबूजी।"

"कल ड्राइवर को भेज दूँगा, उसके साथ देख आना।"

नितीन उठा और धीरे-धीरे चल पड़ा।

[ २२ ]

सूर्य की अन्तिम रश्मि की लालिमा आकाश-पट में अँक चुकी थी, पवन के झकोरों में सान्ध्य-पूर्वी मूर्त्त थी, वृक्ष-लता में फगुआ की रंगत थी। विश्व की नसों में बसन्त का पहला चुम्बन अँक चुका था और उस चुम्बन को झोली में सँभारे प्रकृति विश्व संसार में खिलखिला पड़ी थी।

ज्वर-तप्त श्वास में भरा नितीन अपनी गार्डन की बेंचपर सुस्त बैठा हुआ था। नर-नारी का झुण्ड चहुँओर दिख रहा था। कहीं बालक-बालिकाओं की भीड़ में स्वर्ग की पावन हँसी थी।

नितीन बैठा-बैठा विचार रहा था—न भविष्य और न अतीत को। विचार रहा था वह अपने ही वर्तमान आमोद को—बृहत् आमोद की भरमार को। प्रायः पन्द्रह दिन से वह बाहर नहीं गया। हाँ, अपनी ही अनिच्छा से उसे घर में रहना पड़ गया था। ज्वर अधिक था। दवा? किन्तु शराब ही तो उसकी

लुटा न ? फिर डाक्टर को बुलवाकर वह करता क्या ? सो जरूर एक बार दवा के लिये कुछ कहने को हुआ। उसने .क कंठ से कह दिया था—डाक्टर की जरूरत नहीं, सामान्य ज्वर है, अपने आप छूट जायगा। और वह वासु तो वहाँ पर था ही नहीं, जो जोर जबरदस्ती करता। उसे? उसे दूसरे शहर में स्कूल मास्टरी मिल गयी थी, सो महीना भर पहले परिवार के साथ वह वहीं पर चला गया था। जाते समय श्यामा को भी लेता गया था। सो सोच रहा था—नितीन अपने आमोद को। पन्द्रह दिन के बाद आज वह उठ सका था, किन्तु वेश्यालय में न जाकर वह यहीं जरा-सा बैठ गया था। विचार रहा था नितीन—अब चलें कहाँ ? सुलोचना, केसर, रानी, देवयानी, वासन्ती आदि सब पुरानी हो गयी हैं, बूढ़ी अम्मा के मरने से वहाँ का रंग भी फीका पड़ गया है। रही वह गङ्गा-तट की रहनेवाली, हाँ खूबसूरत वह जरूर है, लेकिन—नारी-कंठ के कल हास्य ध्वनि से उसकी विचार-धारा टूट पड़ी। नितीन ने लौटकर देखा, कुछ स्त्रियों के साथ बाँसुरी चली जा रही थी।

"बाँसुरी—वंशी।" अपने ही अनजान में पुकार उठा नितीन, क्यों और किसलिए पुकारा, सो वह स्वयं ही नहीं जानता।

बाँसुरी रुकी, उपेक्षा से उसे देखा, फिर पूछा—"क्या कह रहे हैं आप ?"

"कुछ नहीं।"

विस्मय से बाँसुरी ने उसे देखा फिर चलने को हुई। नहीं—वरन चलते से लौटी, जरा अग्रसर होकर नितीन के निकट पहुँची—"और वह तो अच्छी है न।"

"कौन?"

"वह मीठी गुड़िया श्यामा?"

"मजे में है, वासु की चिट्ठी अभी कल ही तो मिली।"

"जब उसे पत्र लिखें, तब लिख दीजिये" चुप हो रही बाँसुरी।

"क्या लिख दूँ?"

और इस प्रश्न के बाद अकारण ही वह शर्मा-सी गई, धीरे से बोली—"यही कि तेरी मौसी ने तेरे लिए जम्फर बुन रखा है।"

"और मेरे लिए?" अनायास वह कह उठा।

पलभर में बाँसुरी का मुख गम्भीर हो गया, और कदाचित् नेत्रों में घृणा की हल्की छाया भी पड़ गयी।

परन्तु आपके लिए मैं क्यों बुनती?"

नितीन का मुख वर्णहीन हो गया, अपने को संभालकर सरल परिहास से वह बोला—"केवल अपमानकारी के नाते।"

"तो बुन दूँगी।"

बाँसुरी सच कह रही है, या कोरा व्यङ्ग ही है, और न इस बात को समझ सकने के लिए नितीन के पास समय था और न रुचि।

"अच्छी बात है, तो इसी परिचय को तुम याद रखो और इसके स्मारक स्वरूप वह जम्फर रहेगा मेरे पास।"

बाँसुरी के मौन-गम्भीर मुख के प्रति देखकर नितीन ने पुनः कहा—"और यदि यह परिचय कभी दुनियाँ की धूल में गुम जावे ?"

"परन्तु उस विचार का भार मैं आपही पर जो छोड़ रही हूँ नितीन बाबू !"

"और तुम ?"

"मेरे पास इतना समय ही कहाँ है ?"

सहसा नितीन दुर्निवार रोष से काँप उठा—"सो मैं ही एक फालतू हूँ न।"

"सो तो आपही जाने। अच्छा तो।"

"फिर जाओ न। मैं तुम्हें गोद में बिठाने के लिए व्याकुल थोड़े ही हूँ।"

बाँसुरी विस्मय से ऐसी स्तब्ध हो रही कि स्पन्दनहीन-सी खड़ी ही रह गयी। तब तक उसकी साथिनें दूर निकल गयीं। और नितीन प्रायः उससे लगकर खड़ा हो गया—शायद जाने में या अनजाने में।

"बाँसुरी—वंशी।"

बाँसुरी ने भाव-शून्य नेत्र उठाये।

"आज मेरा जी हवा में उड़ा-उड़ा, बहा-बहा फिर रहा है।" वैसे ही बाँसुरी देखती रह गयी।

"मेरा जी प्रसन्नता से भर रहा है वंशी।"

"हूँ।"

"वह कमल का फूल खिला हुआ है।"—अपनी खुशी में मस्त मृदु गुञ्जन से कह चला नितीन—

"वह कमल का फूल, देख रही हो न उसे ?"

"कमल का फूल !"—एक प्रतिध्वनि-सी कह उठी बाँसुरी।

"वह कमल का फूल !" मुस्कराकर कहने लगा नितीन—

"क्या मजा है उसके खिलने से ? कौनसी रूप-रेखा है उसके डाल पर झूमने से। वह कमल का फूल—

अमावस्या का घना अँधेरा फैल चुका था तब उद्यान में, छुप-छुपकर छलिया पवन उन बड़े वृक्षों की डाल, पत्तियों से कौतुक रङ्ग में मस्त हो रहा था। उद्यान जन-मानव शून्य हो चुका था, और यह वार्ता उन दोनों के निकट छिपकर रह गयी थी।

"वह अपने में ही मस्त कमल का फूल, कौनसी सार्थकता है उसकी डालपर झूमने में ?"

वह कमल का फूल।" फुस-फुसाकर कहने लगी बाँसुरी—"कल वह झरकर गिर जावेगा।"

"और हर रङ्गीन पंखुड़ी में दबा उसका जोबन मर मिटेगा।"

"मर मिटेगा—मर मिटेगा।" मानो सिहर-सिहरकर, काँप-काँपकर कहने लगी बाँसुरी।

"और मारने के बाद शेष बचे के रुद्ध रोदन का क्षीण कंपन।

"वह कमल का फूल—"

"उसे मैं हाथों से मसलूँगा बंशी !"

साहसा बाँसुरी सहमकर सीधी खड़ी हो गयी—"नितीन बाबू!"

"लेकिन मैं उन दोनों आवाजों को भी तो पहचानता हूँ न वंशी।"

"और मैं भी तो नर-पशु को पहचानती हूँ न नितीन बाबू।"

"लेकिन इस एकान्त अँधेरे में अगर मैं उस कमल को नोच डालना चाहूँ, तो कौन मुझे रोकेगा?"

"मैं।"

"तो रोको वंशी।"—उसने बाँसुरी का हाथ पकड़ लिया। और दूसरे ही पल हट आया—"डर गयी वंशी? नहीं कैसे? तुम्हारी लाठी और तुम कुछ भी नहीं कर सकतीं—इस शराबी नितीन का। लेकिन नहीं, तुम जाओ।"

"किन्तु नितीन बाबू, आप चाहते क्या हैं मुझ से?" चले जाने के बदले बाँसुरी वहीं उसी धूल में जमकर बैठ गयी।

"आज मैं निपटारा करके ही लौटूँगी।"

"इस साहस की मैं प्रशंसा नहीं कर सकता बाँसुरी। साहस नहीं—यह दुस्साहस है।"

"इसका विचार-भार आप मेरे ऊपर छोड़ सकते हैं!"

"अच्छी बात है।

"केवल माँगती हूँ अपने प्रश्न का उत्तर।" बाँसुरी बोली।

"सिर्फ प्रेम—याने लव। तुम मुझ से लव करने लग जाओ।"

"उत्तर है इसका घृणा।" असीम साहस से, झँझलाकर बाँसुरी कह उठी।

"विचारकर जवाब दो।

यद्यपि उस अन्धकार में नितीन की मुखाकृति दिख नहीं रही थी, परन्तु उस स्वर की व्यथित निराशा अन्धकार की नसों में मानो एक घूर्णावर्त की सृष्टि करने में लग गयी।

पलभर के लिये बाँसुरी रुको न रुकी, तीव्र स्वर में कह उठी वह—"घृणा, केवल घृणा, रन्ध्र हीन घृणा। और कुछ पूछना है?"

"नहीं। जाओ। चलो तुम्हें घर तक पहुँचा दूँ।"

"धन्यवाद। जरूरत नहीं है।"

"अच्छी बात है।"

बाँसुरी निकलकर चली गयी। और नितीन, मुस्कराता, सिर हिलाता हुआ गेट के बाहर निकलकर कार पर जा बैठा। ज्वर तब उसका अधिक बढ़ रहा था।

[ २३ ]

दोपहर के गम्भीर श्वास में दर्शन की पोथी खुली पड़ी थी। चील दिग्दिगन्त का सन्देश दे रही थी। कागों के मिलित स्वर में थी—एक करुण जिज्ञासा।

और नितीन रुग्ण शय्या पर पड़ा-पड़ा कुछ विचार रहा था। चारों ओर के दीवालों पर के नग्न नारी चित्र मानो व्यङ्ग से मुस्करा रहे थे। हृदय रन्ध्र के तारों में उसके, बेसुरी झंकार उठ रही थी। गृह-शय्या पर आमोद-प्रमोद की स्मृति म्लान थी। तिपाई पर भरी शराब की बोतल परिहास की हँसी हँस रही थी। नितीन की चिन्ता रसहीन न थी। नेत्र निबद्ध थे चेयर पर उपविष्ट उस चाय पान-रत नारी के मुख पर।

"तुम भी थोड़ी चाय पीलो न।"—वेश्या केतकी ने कहा। नितीन को देखने के लिये केतकी नहीं आई थी, कार भेजकर

नितीन ने इसे बुलवा लिया था, जैसा कि बीमारी की दशा में प्रायः किया करता।

"चाय नहीं ह्विस्की दो। और तुम पलङ्ग पर आकर बैठो केतकी।"

इठलाती, मुस्काती केतकी उठकर बोतल के निकट पहुँची, शराब डालने को हुई।

संकुचित हाथों से द्वार का परदा किसी ने हटाया और वैसे ही संकोच में सिमटी-सी गृह में प्रवेश किया। उस मृदु पद-ध्वनि से नितीन ने जरा सिर उठाकर देखा और गुलाबो के मुख पर दृष्टि पड़ते ही वह विस्मित स्वर से कह उठा—"खूबसूरत चेहरे पर यह नीले-नीले दाग कैसे ?"

नितीन के स्वर से केतकी ने ग्लास हाथ में लिये लौटकर देखा और उस रूप-परी पर दृष्टि बद्ध किये एक मूर्ति की भाँति वैसी ही खड़ी रह गयी। नितीन के शय्यापार्श्व तक पहुँचते-पहुँचते गुलाबी के आँसू रुकते-रुकते भी झर पड़े फिर सावन-भादों की झड़ी-सी लग गई।

विभ्रत भाव से नितीन शय्या पर उठकर बैठ गया, हाथ पकड़ कर गुलाबो को बैठाया, पूछा—

"बात क्या है कुछ कहो तो सही।"

"मुझे उसने निकाल दिया है।" सिसकती हुई वह कहने लगी।

"निकाल दिया है तुम्हारे पति ने ?"

"हाँ और बिरादरी वालों ने भी।"

"कोई बात नहीं, तुम यहीं पर आकर रहो।"

सहज स्वर से कहा नितीन ने।

"यहाँ—यहाँ?" गुलाबो के कंठ के अखण्ड विस्मय में नितीन को विद्ध किया—"इसमें चौंकने की क्या बात है?"

"वही तो एक बात है बाबूजी, और इसीलिए तो उन्होंने निकाला हो है—" गुलाबो को दृष्टि सहसा नितीन के रुग्ण मुख पर पड़कर आतङ्क से स्तब्ध हो रही—"तुम बीमार हो बाबूजी परन्तु उस दिन जब मैं रुपये लेने आई थी, तब तो ऐसे पीले नहीं पड़ गये थे।"

कब और कौन से दिन गुलाबो ने नितीन को आप कहना छोड़ दिया था और आपके दूरत्व को त्यागकर तुमके अपनेपन में उसे अपना ही एक बना लिया था, सो वह स्वयं ही नहीं जानती, और कदाचित् जानने की चेष्टा भी नहीं की।

"कुछ ज्यादा बुखार आ जाया करता है, इन दिनों गुलाबो, सोचने की बात नहीं। निकल जायगा वह योंही। हाँ, तब?"

"वे लोग कह रहे थे—बाबूजी तुम्हें रुपये क्यों देते हैं? मैंने कहा—वह आदमी थोड़े ही हैं, देवता हैं, सो दुनियाँ को सुख दिया करते हैं।" फिर वही देवत्व की बातां। नितीन रोमांचित होने लगा।

केतकी सहसा खिलखिला कर हँस पड़ी।

देखा—गुलाबो ने इतनी देर के बाद। उसकी दृष्टि उस विलासवती के मुखपर आवद्ध हुई और एक भीरु पक्षी की भाँति भय-संकोच से वह सिमट-सी रही।

नितीन का त्यक्त स्वर रूढ़ सुनाई पड़ा। "अच्छा, तो तुम अब जा सकती हो केतकी !"

"अब मेरी जरूरत मिट चुकी न।"

"सो मैं कह नहीं सकता, इस वक्त तुम चली जाओ !" केतकी गर्वीले चरणों से निकलकर चल पड़ी।

"हाँ—तब क्या हुआ गुलाबी ?"

"मुझे कहते शर्म आती है बाबू जी, आप जैसे देवता को भी वे पाप लगाते थे।"

"पाप ? कैसा पाप गुलाब !" कौतुक-सरल कण्ठ से पूछा नितीन ने।

"कहते थे—कहते थे।"

"हाँ-हाँ, कहो।"

"कहते थे—वह शराबी है, बदमाश है, बहू बेटियों को भरमाना उसका काम है। वह तुझे योंही क्यों रुपया देने चला, जरूर तुझे वह— "

गुलाबी लज्जित भाव से चुप हो रही।

नितीन चुप हो रहा।

"कल मुझे सबों ने मिलकर मारा, बहुत मारा। फिर बिरादरी के मुखिया ने मुझे जात से निकाल दिया, और उसने घर से।"

"किसने ?"

"मेरे पति ने।"

"और बच्चे ?'

"मेरे साथ हैं। मेरे पास रुपये बच रहे थे, सो ढीमर मुहल्ले में एक मिट्टी की कोठड़ी भाड़े पर ले ली है।"

"चलो अच्छा किया, अब सोचने की क्या बात है।"

गुलाबी अवाक् रह गयी—समाज ने उसे निकाल दिया है, कुलटा कहकर त्याग दिया है, और यह देवता कह रहा है—इसमें सोचने की क्या बात है ? समाज से निकाली— वह बच्चों को लिये-लिये ऐसे बड़े संसार में रहेगी भी कैसे ?"

गुलाबी के आनत मुख के प्रति निहारता हुआ बोला नितीन—"क्या सोच रही हो गुलाबी ?"

"अब इतनों को मैं पालूँगी कैसे ?"

"मत फिक्र करो। वे लोग पाजी हैं। खुद नहीं पाल सकते, मुफ्त में ऐब लगाते हैं। जितने चाहो रुपये ले जाया करो।"

"तुम देवता हो बाबूजी, सो मैं जानती हूँ। किन्तु वे लोग जो पाप लगा रहे हैं, आज मुझे यहाँ छिपकर आना पड़ा और आगे भी छिपकर ही रुपये लेने आना पड़ेगा।"

"छिपकर ?" नितीन का स्वर करुण आर्तनाद सा सुनाई पड़ा।

"हाँ, छिपकर ही तो बाबूजी।"

विस्मयसे नितीन निर्वाक् हो रहा—यह कैसी मनोवृत्ति है ? यदि यहाँ आना यह पाप नहीं समझती, तो फिर लुकने-छिपने की जरूरत ही क्या है ?

"यहाँ आना तुम बुरा समझती हो ?"

"बुरा ? क्या कह रहे हो तुम बाबूजी ? नहीं-नहीं। फिर

दिन आपके दर्शन हो जाते हैं, उस दिन अपने को भाग्यवती समझती हूँ।"

नितोन कुछ कहने को हुआ, किन्तु दूसरे ही पल वह चुपही रहा।

"केवल तुमको जताने आयी थी बाबूजी, अब बैठूँगी नहीं। यदि कोई देख लेगा तो मेरा जीना मुश्किल हो जायगा।" गुलाबो ने घूँघट से मुंह ढंक लिया और डरती-काँपती, चारों ओर शंकित दृष्टि से देखती हुई निकलकर चल पड़ी।

स्तब्ध, मौन नितोन उस ओर देखता ही रह गया!

[ २५ ]

स्त्री-व्यायाम शाला का उस दिन वार्षिकोत्सव था। सन्ध्या के पूर्व ही उस दिन जन-समागम हो रहा था। कदली-वृक्ष और आम्र पल्लवसे गेट से लेकर उद्यानपथ एवं शाला का वृहत् हाल सुशोभित हो रहा था। शाला के निवासी वृन्द हालमें उपस्थित थे। वहीं की निर्मित दरी हाल में बिछाई गयी थी और शाला के निर्मित चेयर बेंत के मोढ़े आदि श्रेणीवद्ध भावसे रखे हुए थे। बीच में उच्च मंच, उस पर खादी बिछी हुई थी। शाला के रन्धनागार में बड़ी-बड़ी कढ़ाइयाँ, हाँड़ी चढ़ी हुई थीं। स्त्रियाँ मिठाई, पूरी, साग बनाने में लगी थीं।

हाल में बैठी बाँसुरी पुष्पराशि के ढेर से पुष्प-मालाओं को अलग-अलग कर रही थी।

ऐसे ही समय एक दुर्मद् की भाँति स्खलित चरण से कमरे में प्रवेश किया नितोन ने। उसके पीछे कई स्त्रियाँ क्रोधित स्वर से कुछ कहती हुई पहुँच गयी।

"बाँसुरी देखो! यह शराबी फिर पहुँच गया, और हमारे रोकने पर भी अन्दर घुस आया।"

बाँसुरी ने चकित नेत्र उठाये न उठाये, धीमें स्वर से बोली—"आज यहाँपर निमन्त्रितों की ही जगह हो सकेगी नितीन बाबू।"

नितीन जोरसे हँसा—"तुम्हारी पूड़ी-मिठाई के लोभ से नहीं आया हूँ वंशी। आया हूँ अपना जम्फर लेने, बना लिया न तुमने उसे?"

जम्फर? गृह की जनता एक दूसरे का मुँह निहारने लगी। स्त्रियों की सन्दिग्ध दृष्टि अपने आप बाँसुरी के मुँह पर निबद्ध हो रही।

"जम्फर?" बाँसुरी संयत स्वर से बोली—"एक जम्फर आपको मैं अवश्य बना दूँगी।"

जरा ठहरकर बाँसुरी ने फिर कहा—"परन्तु उसके लिये आपको यहाँ तक कष्ट करके आने की जरूरत नहीं। हफ्ते भर में जम्फर आपके घर पहुँच जायगा।"

"हफ्ता भर?" कुछ विचारता हुआ मानो नितीन अपने-आप कह उठा—"एक हफ्ता? शायद तब पहन सकूँ। एक हफ्ता—एक हफ्ता!"

बाँसुरी ने चकित नेत्र उठाये और इसके बाद वह विराट् विस्मय से स्तब्ध हो रही।

"नितीन बाबू!" देर के बाद वह बोली—"बैठिये, बैठ जाइये, गिर पड़ेंगे।"

"इतनी शराब भी भला क्यों पीना?" कई लोग कह उठे।

बाँसुरी ने उस कथन पर ध्यान तक न दिया "कब से बीमार हैं आप ? बैठ जाइये। मैं अभी जम्फर लाये देती हूँ।"

वह निकलकर भीतर चली गई।

शाला का एक वृद्ध व्यक्ति हाल में पहुँच गया। सर्व प्रथम इसकी दृष्टि पड़ी नितीन पर और वैसे ही वह अग्नि जैसा जल उठा—"फिर तुम यहाँ आये हो ? शराबी, बदमाश,—उस दिन मेरी बंशी माई का अपमानकर भाग निकले थे—मेरी गैरहाजरी में। अब देखें तुमको कौन बचाता है। चलो, निकलो, दूर हो—यहाँ से।" वृद्ध उसका हाथ पकड़कर निर्दयता से खींचने लगा।

नितीन ने एक बार अपने अवश-प्राय हाथ पैर हिलाये, फिर खींचकर एक तमाचा वृद्ध के मुँह पर मार दिया। वृद्ध दूर जा गिरा। कमरे में मानो वज्रपात-सा हो गया।। जनता नितीन को घेरकर खड़ी हो गयी।

और जिस पल में आततायी के सबल बाहु उत्थित हुए नितीन को वज्रप्रहार से जर्जरित करने के लिये, ठीक उसी पल पहुँच गयी हाथ में जम्फर लिये बाँसुरी।

दूसरे पल बाँसुरी का क्षुब्ध स्वर ध्वनित हो उठा—"छिः, एक अशक्त, बीमार के साथ यह कैसा बर्ताव कर रहे हैं आप लोग ?"

उस स्वर का असर क्रुद्ध जनता पर उसी पल पड़ा। उत्थित बाहें नत हो पड़ीं। कोई उद्दण्ड कह उठा—"शराबी का न जीना ही अच्छा है।"

"शराबी भी तो आदमी है न महेश भाई !" बाँसुरी शान्त स्वर से बोली।

"नहीं यह तो निरा जानवर है।"

बाँसुरी मधुर हँसी—"इनमें यदि दुर्गुण हैं तो सतगुण भी जरूर हैं।"

"सत् और शराबी नितीन में?"

"हाँ, ये भी तो आदमी ही हैं न।"

"तो आदमी बन जाना ही उसकी विशेषता नहीं है बाँसुरी-देवी!"

"मनुष्यता ही तो उसकी विशेषता है। ऐसा आदमी है भी कौन जिसमें अच्छाई कुछ भी न हो? और ऐसी बुराई है भी कहाँ, जो कि उसके सतगुणों ढँक सके?"

नितीन ने पूर्ण दृष्टि से बाँसुरी की ओर देखा, फिर न जाने कौन से विचार से मुस्करा पड़ा। बोला—"अच्छा यार, चुप भी रहो। लो मैं जा रहा हूँ। लाओ मेरा जम्फर।"

उसने जम्फर हाथ में लिया, फिर पूछा—"किसने बुना है इसे?"

'शाला की बनी है।"

"यह तो समझा, पूछता हूँ इसे किसने बनाया है?"

"किसी स्त्री ने बनाया है।"

"लो तुम्हारा जम्फर, मुझे इसकी जरूरत नहीं।" जम्फर उसने दूर फेंक दिया और चल पड़ा।

"देखा न आपने इस शराबी की कीर्ति?"

"दुनियाँ में ऐसे कितने ही रहा करते हैं। किन्तु समय निकला जा रहा है गोपीनाथ, अपना-अपना काम देखो।"

वृद्ध निकट में आकर खड़ा हो गया—"भाई, तुमने बुरा किया।"

"क्या दादा?"

"यही कि उसे मारने से रोका।"

"मुझे अचम्भा है दादाजी, आपकी बातों पर।"

"कैसे भाई?"

"अशक्त, पीड़ित को मारना ही क्या आज हमारा गौरव है?"

"परन्तु वह तुम्हारा यही अपमानकारी है न?"

मेरा? किन्तु अपनी सम्मान-रक्षा के लिये क्या आज मुझे दूसरे की शरण लेनी होगी दादाजी?"

वृद्ध ने लज्जित मुख नत कर लिया। और बाँसुरी एक सम्राज्ञी की तरह पुष्प-हारों को एक ओर रखने लगी। गृह की शान्ति पुनः लौट आयी। शाला के स्त्री-पुरुष अपने-अपने काम में जुट पड़े—इस तरह जैसे कि कहीं कुछ हुआ ही न हो।

नितीन घर लौटा। हाथ-पैर उसके शिथिल-अवश से हो रहे थे। मारे ज्वर के देह जल-सी रही थी। और गला उसका तृष्णा से सूखा जा रहा था। प्यास-प्यास—चातक की-सी प्यास उसके हृदय में भटक कर मरने लगी।

उसने ह्विस्की की बोतल मुँह से लगा देखते ही देखते आधी कर डाली। फिर आराम कुर्सी पर अधलेटा पड़ रहा।

और तब रात की चुप्पी में उसके खुले नेत्रों के सामने जाने कितने ही चित्र चल-चित्र के समान चलने-फिरने लग गये।

संसार भर की न जाने कितनी ही पुञ्जीभूत घृणा मूर्त हो उठी। और उन्हीं सबके भीतर एक साधक-सा बैठा नितीन अपने जीवन के साथ समझौता करने में जुट पड़ा।

दुनियाँ में आकर उसने किया क्या? सहसा उसके मन में प्रश्न उठा—क्या क्या, उसने किया क्या? वैसे ही सहसा वह मुस्करा पड़ा—क्यों ऐश-आराम तो किया न, जी भरकर शराब तो पी न? और इसके सिवा अकेला वह ऐसी बड़ी दुनियाँ में करता भी क्या?

और पाना? तो इसके पहले शायद ही किसी ने ऐसा पाया हो—घृणा-घृणा-रन्ध्रहीन, छिद्रहीन घृणा, केवल घृणा, पाई उसने केवल घृणा! और सबसे बड़ा परिहास तो यह है कि केवल मात्र एक नारी को उसने चाहा, शायद वास्तविक ही उसने उसे चाहा, साथिन के रूप में उसे पाना चाहा और उसी-उसकी प्रेमास्पदा के निकट मिली उसे घृणा-विराट घृणा!

वंशी-बाँसुरी-नितीन का जी जाने कैसा कर उठा। फिर अपने-आप वह हँसने के व्यर्थ प्रयास में हैरान होने लगा। इसके बाद उठा, आलमारी खोली। ह्विस्की की दूसरी बोतल निकालकर मुँह से लगा लिया। हाँ, इस बड़े से संसार में अकेला रहने वाला-साथी रूप में पाया उसने मात्र इस ह्विस्की ही को न? फिर उसे वह तजता भी कैसे?

[ २५ ]

दोपहर ढल चुकी थी। आकाश पर सात रङ्गों का रङ्गीन

रामधनुष पड़ा-पड़ा मुस्करा रहा था, शायद मुस्कराना उसका स्वभाव हो, या और कुछ हो ? उस सप्त रङ्ग की छाया पृथ्वी पर लोट पड़ी थी।

अपने कमरे में रुग्ण शय्या पर पड़ा था नितीन आँख बन्द किये हुये। ज्वर-तप्त मुख की रेखायें स्फीत हो रही थीं, बलहीन हृदय स्पन्दन-द्रुत था और उन निमीलित नेत्रों में कौन-सी भावना व्याप्त थी सो वही जाने !

शराब-पूर्ण ग्लास तिपाई पर रखा हुआ था, ह्विस्की शायद नितीन ने पी थी, शायद अशक्त हाथों ने गिलास उठाने से इन्कार कर दिया हो !

मुख पर अवगुण्ठन ढाँके एक स्त्री चुपकी-चुपकी पहुँची कमरे में। भय—आतङ्क से उसने सोये हुये नितीन को देखा, फिर रोदनरुद्ध स्वर से पुकार उठी—

"बाबूजी !"

नितीन ने नेत्र खोले—"कौन गुलाबी ? बड़े वक्त से पहुँच गयी हो तुम !"

"कैसी तबियत है आज बाबूजी ?" वह रो पड़ी।

"रोती क्यों हो ? मैं मरने का नहीं। उस ग्लास को मेरे मुँह तक लगा दो गुलाबी।"

आँखें पोंछती हुई गुलाबी उठी, पूछा—"नौकर सब कहाँ चले गये ? भीतर से बाहर तक खुला हुआ क्या है ?"

"भाग गये सब।"

"भाग गये—क्यों ?"

"छूतकी बीमारी है न ।"

"क्या हुआ है तुमको बाबूजी ?"

"तुम न समझोगी । दो ग्लास ।"

गुलाबी ने ग्लास हाथ में लिया—फिर नासिका कुञ्चितकर बोली—"यह तो शराब है । ऐसी बीमारी में अगर शराब पीओगे तो बीमारी ज्यादा न बढ़ जायगी ?"

"नहीं, यही है मेरी दवा । इस को पीकर मैं सब कुछ भूल जाता हूँ ।"

"यह दवा कहाँ है बाबूजी ?"

"मेरी दवा यही है गुलाबी, लाओ दे दो ।"

गुलाबी ने ग्लास उसके मुख से लगा दिया ।

और ठीक उसी समय मुख पर अवगुण्ठन ढाँके चुपकी-चुपकी पहुंच गयी एक दूसरी नारी ।

विद्युत् गति से वह आई, परन्तु कमरे में प्रवेश कर उसकी गति शिथिल पड़ गयी । वितृष्णा, विराग और कदाचित् घृणा से उसने उन दोनों को देखा, फिर द्रुत कर से शराब का ग्लास एक प्रकार छीन-सा लिया, ग्लास को खिड़की से फेंक कर वह शय्या के निकट स्टूल पर बैठ गयी ।

नितीन ने उसकी ओर देखा, फिर वैसे ही अनुत्तेजित स्वर से बोला—"वक्त से पहुँच गयी हो तुम वंशी, वरना तुम्हारी घृणा की पोटली खाली ही रह जाती ।" अपने परिहास से वह स्वयं ही हँसने का प्रयास करने लगा ।

बाँसुरी ने गुलाबी की ओर देखा—"क्या यहाँ शराब पिलाने के लिए तुम ठहरी हुई हो ? और इनके मरने के बाद—वहाँ भी पिलाया करोगी, क्यों ?"

गुलाबी कुछ समझी कुछ न समझी, समझी केवल इतना—कि बाबूजी उसके मर जावेंगे और इसके बाद वह विवश होकर रोने लगी।

"उसे मुफ्त में रुक रही हो वंशी, शराब तो मैं ने ही माँगा था उससे।"

"रोती क्यों हो बहन ?" बाँसुरी जरा लज्जित हुई।

"बाबूजी—मेरे देवता बाबूजी अब न जियेंगे।" वह सिसकती हुई कहने लगी।

बाँसुरी उठी, उसके हाथ की वस्तु गिर पड़ी।

"क्या है उसमें ?" नितीन ने पूछा।

"जम्फर।"

"देर लगा दी वंशी।"

बाँसुरी चुप रही। सहसा व्यस्त भाव से कमरे से निकल कर वह चल दी।

नितीन के नेत्रों में विस्मय की एक हल्की छाया पड़ी। उसने नेत्र पुनः बन्दकर लिए।

गुलाबी बैठी उसके सिरपर पंखा करने लगी।

जूते के शब्द से नितीन ने आँखें खोली। डाक्टर के साथ बाँसुरी खड़ी थी।

एक बाध्य शिशु की भाँति नितीन ने। डाक्टर से एकजामिन करवा लिया।

परीक्षा कर डाक्टर ने विकृत मुख से पूछा—"इलाज किसका हो रहा है ?"

"किसी का नहीं ।" नितीन ने उत्तर दिया।

निबिड़-विस्मय से डाक्टर और बाँसुरी स्तब्ध रह गये !

"कितने दिन से बीमार हैं आप ?"

"शायद छः माह या साल भर होगा ।"

औषधि—पथ्य की व्यवस्था कर डाक्टर चला गया।

और बाँसुरी रोगी के निकट बैठ गयी, अनुतप्त स्वर से उसने पूछा—"तो यह आत्महत्या ही है नितीन बाबू !"

"परन्तु किस दुःख से ?" पूछा नितीन ने।

बाँसुरी चुप रह गयी।

"वक्त से पहुँच गयी हो वंशी !"—रुक-रुककर कहने लगा नितीन—"मेरा यह अन्तिम अनुरोध है— दुनियाँ से। समझी न वंशी, और शायद तुमसे भी।"

बाँसुरी के जिज्ञासु नेत्र के प्रति दृष्टिबद्ध किये वह कहने लगा—"मेरा दाह श्मशान में न करना दुनियाँ से स्वतन्त्र अपनी समाधि बनाना चाहता हूँ। समझी न बाँसुरी ? मरने के बाद भी मैं दुनियाँ की घृणा सहन न कर सकूँगा। जहाँ पर कि बहुत से साधु-महात्माओं की राख पड़ी हो, उनकी श्वास मड़रा रही हो, ऐसे श्मशान में अपना श्वास नहीं मड़राना चाहता

हूँ मैं। समझीं न बंशी। अपने बगीचे के कोने में अपने लिए जगह मैंने चुन रखी है। झाँककर देखो खिड़की से बंशी, साफ दीख पड़ेगी। देख लिया न तुमने-उस जगह को? अच्छा तो वहीं मुझे जला देना, नहीं-नहीं। जलना मैं नहीं चाहता, गड़वा देना वहीं पर मुझको। और उस पर संगमरमर का चबूतरा बनवा देना। नहीं—नहीं, मरने के बाद भी मैं दुर्गन्ध नहीं सह सकूँगा। सड़े, मैले बिस्तर पर नहीं सो सकूँगा। समझीं न बंशी! चबूतरे के चारों ओर गुलाब, जूही, बेले के झाड़ लगवा देना।"

गुलाबी चिल्लाकर रो पड़ी।

नितोन ने एक बार गुलाबी के प्रति देखा दूसरी बार बाँसुरी के। फिर परम सन्तोष से कह उठा—"रोती क्यों है री पगली? तेरा देवता उसी चबूतरे पर बैठा तेरी पूजा लिया करेगा न? और तुम बंशी? ये दो बूंद आँसू उसी घृणास्पद के लिए है न?" बाँसुरी ने मुँह फेर लिया।

"मरना कैसा बंशी?" कहने लगा नितोन—"उसी समाधि पर बैठा—मैं नित नवीन घृणा तुम्हारी लिया करूँगा न।"

सहसा बाँसुरी उठकर खड़ी हो गयी, और वैसे ही सहसा नितोन के निकट पहुँच गयी।

"घृणा! कैसी घृणा? किस घृणा का सन्देश सुना रहे हो?"

"जिस घृणा को परिचय के प्रथम मुहूर्त से ही सुनता आ रहा हूँ।"

"और उसके अन्तराल में कभी झाँककर देखने की चेष्टा की थी तुमने ?"

"वंशी—बाँसुरी—"

"हाँ यदि देखने की चेष्टा करते तो देख पाते, उसके अन्तराल में बेकार देश की नारी अपने मातृत्व को किस प्रकार से बाँहों में जकड़े बैठी है।"

"वंशी, बाँसुरी—"

"ठहरो जरा, मिनट भर ठहरकर जाओ, इस जम्फर को पहनते जाओ।"

और तब मृत्युपथ-यात्री खुशी से मचल-सा पड़ा—"इसमें तुम्हारे हाथ की गन्ध है न वंशी ?"

जम्फर पहनाती हुई बाँसुरी स्निग्ध हँसी—"चुपके से सो रहो।"

"और मन की गन्ध ?"

निरुत्तर बाँसुरी उसे वैसे ही जम्फर पहनने लगी।

"वंशी।"

"हाँ।"

"सो जाऊँ ?"

"हाँ।

नींद से आँखें झँप रही हैं।"

"अब शाम से सो रहो।

"ह्विस्की की बोतल मुंह से लगा दो बंशी !"

"नहीं !" झम्फर पहनाकर बाँसुरी खड़ी हो गयी ।

"नहीं ? लेकिन चलने की बेला इस खुशी को फिर जीवित कैसे रख सकूँगा ?"

सहसा बाँसुरी उसके मुख पर झुक पड़ी और वैसे ही सहसा उसके नेत्र नितीन के इस स्पन्दन-हीन मुख पर स्थिर, अचल हो रहे ।

और तब ? हाँ, तब शायद उसका घृणास्पद या प्रेमास्पद चल बसा था, मरण बेला की खुशी को सदा जीवित रखने का एक छोटा, भटका-सा चुम्बन लिये बिना ही चल बसा था !

नितीन के नेत्रों की तंद्रा गाढ़तर होकर हो रह गयी ।

"बाबूजी, मेरे राजा बाबू, मेरे देवता बाबू—चल बसे ।" गुलाबी बिलख-बिलखकर रोने लगी । उस रोदन शब्द से बाँसुरी ने शव की नाईं विवर्ण मुख उठाया । फिर एक ओर चुपचाप बैठ रही ।

◎ ◎ ◎ ◎

उद्यान के वृक्ष-लता में सहस्रों पुष्प राशि की मधुर मुस्कान भ्रमर का मृदु गुञ्जन ! मधुमक्खी की शान्त व्यस्तता । एक ओर संग-मरमर की समाधि । समाधि को घेरकर सुगन्धित पुष्प के वृक्ष ।